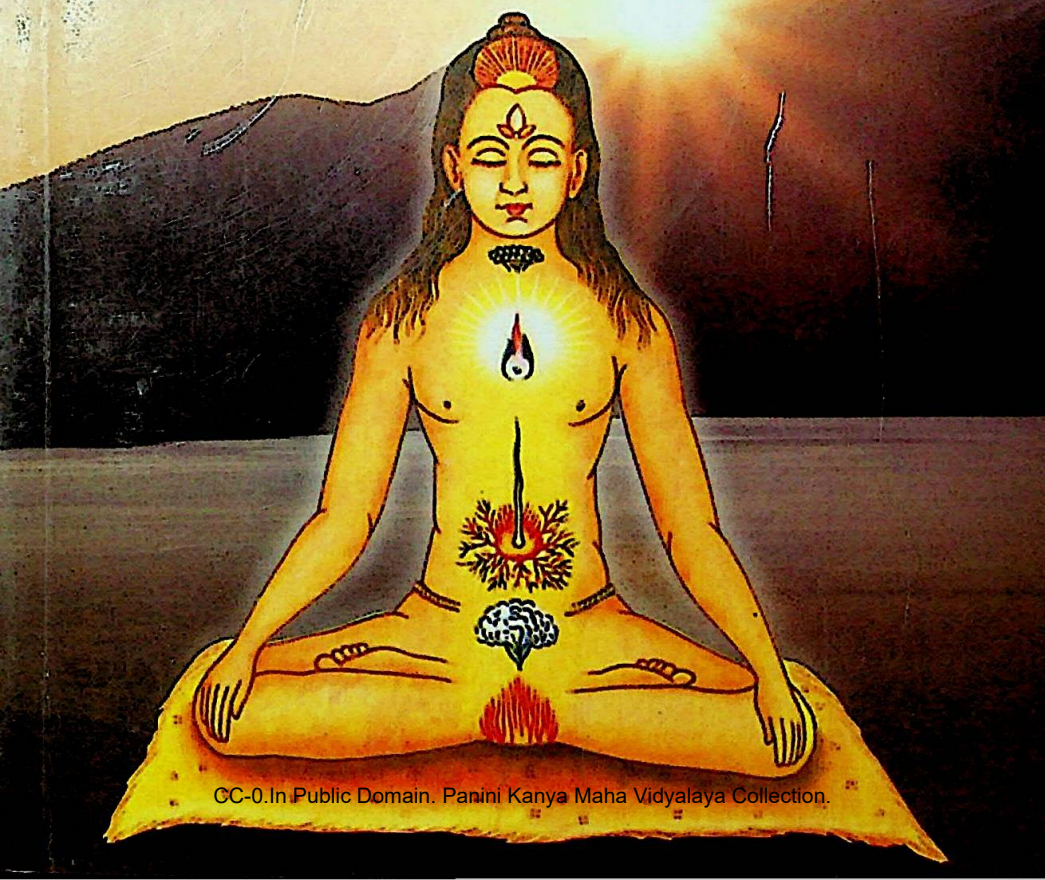
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

# सन्ध्यासोपान

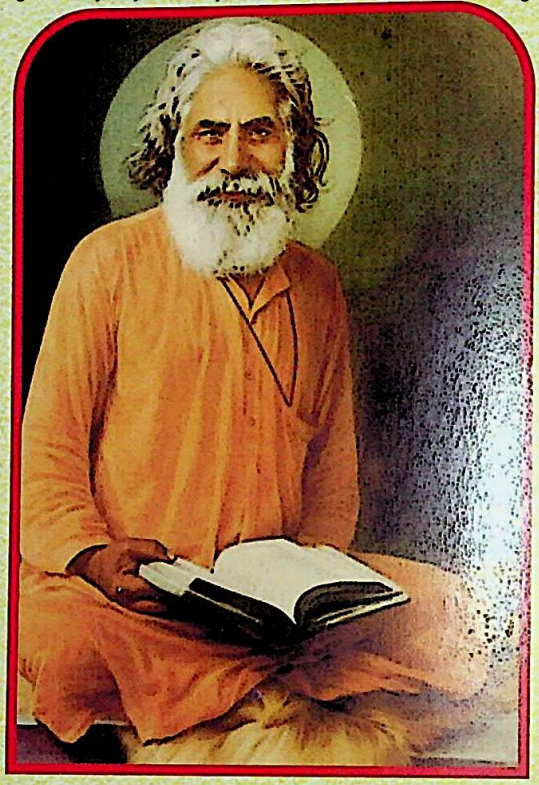
वीतराग महात्मा
प्रभु आश्रित जी महाराज

2.01



CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# वीतराग महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

जन्म १८८७-महाप्रस्थान १६ मार्च, १९६७

सरलता-सादगी के प्रतीक-सौम्य सन्त प्रभुआश्रित जी आज से लगभग एक सौ बाईस वर्ष पूर्व जिन्होंने निर्धनता के आंचल में नेत्र खोले, तपस्या के आंगन में लोरी सुनी, तपती दुपहरी में पोथी पढ़ी, अनिकेत रह कर गृहस्थी संभाली, भूखे रहकर हरिभजन किया, मौन रहकर आराध्य को रिझाया, साधक बनकर योग को साधा, प्रचारक बनकर यज्ञ को विस्तारा, चिन्तन करके गायत्री को सराहा, पोथी पढ़-पढ़कर जीवन को बांचा, यश-अपयश से परे रहकर नाम-धन अर्जित किया और अन्त में पंचतत्व की चदरिया को ज्यों की त्यों धरकर जीवन मुक्त हो गए।

-डा॰ राजा बुद्धिराजा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सन्ध्या सोपान

वीतराग महात्मा प्रभुआश्रित जी महाराज

वैदिक भक्ति साधन आश्रम
आर्यनगर, रोहतक-124001
दूरभाष : 01262-253214

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वाधिकार :
प्रकाशकाधीन

प्रकाशक एवं वितरक :
**वैदिक भक्ति साधन आश्रम**
आर्यनगर, रोहतक-124001
दूरभाष : 01262-253214

नवां संस्करण सितम्बर 2009

मूल्य : 40/- रुपये

मुद्रक :
मयंक प्रिन्टर्स
2199/64, नाईवाला, करोलबाग
नई दिल्ली-110005
मो. 9810580474

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# दो शब्द

आधुनिक युग के यशस्वी सन्त महात्मा प्रभुआश्रित जी महाराज समस्त मानव जाति के लिए एक वरदान सिद्ध हुए हैं। पूज्य गुरुदेव परम त्यागी, तपस्वी, कर्मठ, कर्मयोगी एवं वैदिक मिशनरी थे। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन वेद-यज्ञ-योग के प्रचार-प्रसार में लगा दिया।

'सन्ध्या-सोपान' आठ सोपानों में विभक्त है जिसमें सन्ध्या की उपादेयता, विधि और उद्देश्य की ओर मानव-मात्र का ध्यान आकर्षित किया गया है। यह पुस्तक संवाद-शैली में लिखी गयी है। वक्ता है एक अनुभवी वनी और श्रोता हैं, सहृदय दम्पत्ति और कुछ छात्र! कुछ प्रश्नोत्तरों द्वारा शंका-समाधान किया गया है और कुछ द्वारा मानव-मन की जिज्ञासाओं का प्रस्तुतीकरण किया गया है।

महाराज जी की लेखनी अत्यन्त प्रभावशाली थी। जटिल से जटिल गूढ़ विषयों को सरल और रोचक भाषा में मनभावन और अनुप्रेरक रूप में प्रस्तुत करते हुए इसी पुस्तक में लिखा है–

## जल से यश

परमात्मा की समस्त सृष्टि, विशेषतः वनस्पति तथा औषध आदि को सौन्दर्य प्रदान करने वाला जल ही है, जिसे देखकर अनायास ही मनुष्य प्रभु का गुणगान करने लगता है। कुछ काल तक वर्षा न हो, जल न बरसे तो सारी खेतियां, वृक्ष, वन मुरझा जाते हैं अर्थातृ अधमरे-से दिखाई देने लगते हैं। जल बरसते ही सबमें एक नया जीवन और नया यौवन आ जाता है। मनुष्य-शरीर की शोभा तो जल से ही है। यदि जल न हो, तो कपड़ा भी स्वच्छ न पहन सके। यह निर्णय तुम्हीं कर लो कि मैले वस्त्र मनुष्य का यश कराते हैं, या अपयश?

## जल से बल

संसार में बल भी कई प्रकार का है-धन-बल, जन-बल, शारीरिक बल, सामाजिक बल, बुद्धि-बल, आत्मिक बल आदि। इन सभी का

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रय जल है। कारण, जल से ही समस्त अन्य तथा सम्पत्ति पैदा होती है, यहां तक कि सन्तान-उत्पत्ति भी जल से ही होती है। मेधा बुद्धि का सम्बन्ध पहले ही जल से बतलाया जा चुका है। समाज-बल संगठन से बढ़ता है। जितना भी हम एक-दूसरे को खाने-पीने के लिए पूछेंगे, उतना ही संगठन सुदृढ़ होगा। मुसलमानों में यह गुण हिन्दुओं की अपेक्षा बहुत अधिक है, तभी वे संख्या में हिन्दूओं से कम होते हुए भी उनसे बहुत बलिष्ठ हैं। अतः यह मानना पड़ेगा कि जल में संगठन बनाने का गुण है। यह इसका सूक्ष्म गुण समझा जा सकता है। इसीलिए यह गुप्त, विस्तृत और बड़ा प्रभावशाली है।

16.3.1967 को महाराज जी स्वर्ग सिधारे तथापि साधनावस्था उपरान्त उनकी अमर लेखनी से निकले हीरे-मोती शब्द वाक्य पुस्तक रूप में आध्यात्मिक जगत में धर्मप्रेमी जनों का पथ प्रदर्शन कर रहे हैं। लगभग 6 दर्जन पुस्तकों के अनेकों संस्करण छप चुके हैं फिर भी मांग सदा बनी रहती है। रंगीन कवर, अच्छा कागज और सुन्दर छपाई का बड़ा साइज द्वारा पुस्तक को आकर्षण बनाने हेतु लघु प्रयास किया है। जिससे सर्वसाधारण जन लाभ उठा सकें।

इस पुस्तक के प्रकाशन में श्री योगेन्द्र प्रकाश अग्रवाल 301, अनीशा बिल्डिंग, सुभाष रोड, विलेपार्ले (ईस्ट) मुम्बई-57 ने अपने पूज्य पिता श्री राजेन्द्र प्रसाद जी की स्मृति में छपवाकर आश्रम को भेंट की है। आश्रम आपका सदा कृतज्ञ रहेगा। दीर्घजीवन, उत्तम संतान, उत्तम पशु, कीर्ति, धन, ऐश्वर्य और ब्रह्मतेज प्रभु आपको प्रदान करें। यही हमारी कामना है।

यथा-संभव सम्पादन एवं छपाई में सावधानी एवं सतर्कता बरती गयी है, फिर भी कोई त्रुटि रह गयी हो तो उसके लिए क्षमा प्रार्थना ही की जा सकती है।

महाराज जी के अन्तःस्थल से निकले भावों को पढ़कर सभी प्रेमीजन अभिभूत हो जायें, यही कामना के साथ पाठकों के हाथ में पुस्तक सौंपते हुए मुझे हर्ष हो रहा है।

**-दर्शन कुमार अग्निहोत्री (प्रधान)**

16 सितम्बर, 2009

वैदिक भक्ति साधन आश्रम, रोहतक

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


# अनुक्रमणिका


| क्रम | विषय | पृष्ठ |
|---|---|---|
| 1. | प्रार्थना | 7 |
| 2. | भूमिका (आप बीती) | 8 |
| | मेरी सन्ध्या का आरम्भ | 10 |
| | यह पुस्तक लिखने की आवश्यकता | 12 |
| 3. | मनुष्य जीवन-यात्रा के लिए | 14 |
| 4. | विषय प्रवेश | |
| | नई और पुरानी सभ्यता की खिचड़ी | 15 |
| | बाबू-सन्ध्या | 16 |
| | देवी की सन्ध्या और प्रार्थना | 18 |
| 5. | अशान्त मन (पहली सीढ़ी) | 20 |
| | शान्ति की खोज | 21 |
| | सत्संग | 22 |
| | सन्ध्या शब्द के अर्थ | 22 |
| | सन्ध्या-प्रार्थना और स्तुति | 23 |
| | तीन मार्ग | 24 |
| | सन्ध्या, प्रार्थना कब स्वीकार समझी जाय? | 26 |
| | कर्म-मार्ग | 26 |
| | कर्म, उपसना और ज्ञान | 26 |
| | मनुष्य-मनुष्य में अन्तर | 26 |
| | जीवित वाणी | 28 |
| | शब्द में बोलने वाले का आकार | 29 |
| | पिण्डे सो ब्रह्माण्डे | 30 |
| 6. | सन्ध्या-सिद्धि (दूसरी सीढ़ी) | 33 |
| | सन्ध्या-शब्दार्थ-सम्बन्धी कुछ आवश्यक प्रश्न | 34 |
| | सन्ध्या का साधन | 38 |
| | चित्त या ज्ञान | 30 |
| | सत्य | 39 |


CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| क्रम | विषय | पृष्ठ |
|---|---|---|
| | सन्ध्या तथा ज्ञान | 40 |
| | शुद्धि | 42 |
| | शान्ति, एकाग्रता, प्रेम और पवित्रता | 42 |
| | योग तथा सन्ध्या | 42 |
| | यम के साधन और नियम | 44 |
| | मन कैसे जीता जा सकता है? | 46 |
| | राग-द्वेष | 48 |
| | सन्ध्या का समय नियत होने की आवश्यकता | 48 |
| | सन्ध्या की आरम्भिक क्रियाएं आवश्यक हैं | 51 |
| | शिखा-बन्धन | 53 |
| | सन्ध्या 'यज्ञ' है | 55 |
| | शिखा बन्धन तथा गायत्री मन्त्र | 56 |
| | चोटी की महत्ता एक तत्त्व वेत्ता की दृष्टि में | 56 |
| 7. | सन्ध्या-उद्देश्य (तीसरी पीढ़ी) | 59 |
| | आचमन मन्त्र | 59 |
| | दो प्रकार की सुख तथा शान्ति | 59 |
| | जल से रोग निवृत्ति | 60 |
| | जल का गुण, कर्म, स्वभाव धारण करो | 60 |
| | जल से मेधा प्राप्त करो | 60 |
| | जल का चन्द्रमा तथा मन से सम्बन्ध | 60 |
| | दिव्य जल | 61 |
| | बातों का प्रभाव जल पर और कुशा | 62 |
| | आपः के अर्थ | 63 |
| | तीन आचमन तीन प्रकार की शान्ति के लिये | 63 |
| | आचमन-विधि | 64 |
| | जल से कुवृत्ति की रोक तथा सात्त्विक वृत्ति को जगाना | 64 |
| | अर्थ | 64 |
| 8. | उद्देश्य-प्राप्ति का प्रथम साधन (चौथी सीढ़ी) | 66 |
| | अंग स्पर्श-मन्त्र की व्याख्या | 66 |
| | जल से जीवन | 67 |
| | जल से यश | 67 |
| | जल से बल | 68 |


CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| क्रम | विषय | पृष्ठ |
|---|---|---|
| | स्पर्श क्रिया | 68 |
| | पवित्रता: ब्रह्मचर्य | 68 |
| | कर्मेन्द्रियाँ | 69 |
| | प्रधान कर्मेन्द्रियां | 70 |
| | अपनी महान शक्तियों को भिखारी न बनाओ | 71 |
| | कर्म-खण्ड की वाणी जोर | 72 |
| | यश और बल | 73 |
| | वाणी की विशेषताएं | 74 |
| | जल कहां लगायें? | 75 |
| | ईश्वरीय पिण्ड रचना से उपदेश | 75 |
| | आत्म निरीक्षण | 76 |
| | जिह्वा एक, 'वाक्-वाक्' दो बार | 77 |
| | शरीर 'श्री' का साधन है | 80 |
| 9. | मार्जन मन्त्र : बल तथा यश की रक्षा (पांचवीं सीढ़ी) | 82 |
| | आचार-विचार तथा आहार-व्यवहार | 83 |
| | दूसरा अर्थ | 84 |
| | तप की व्याख्या | 86 |
| | जल का तप से सम्बन्ध | 87 |
| | व्यवहार शुद्धि | 88 |
| 10. | आसन तथा प्राणायाम (छठी सीढ़ी) | 90 |
| | ध्यान चक्र | 90 |
| | हाथ | 91 |
| | आसन का फल | 91 |
| | ध्यान-स्थान | 92 |
| | प्राणायाम क्यों किया जाता है | 94 |
| 11. | अधमर्षण मन्त्र (सातवीं सीढ़ी) | 95 |
| | वभाना-वृत्ति | 95 |
| | दिशा का सम्बन्ध सन्ध्या से | 103 |
| | आसन किस चीज का हो | 103 |
| 12. | मनसा परिक्रमा (आठवीं सीढ़ी) | 104 |
| | सर्वरक्षक पिता | 104 |
| | पांच ग्रन्थियां | 106 |


CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| क्रम | विषय | पृष्ठ |
|---|---|---|
| | प्राची दिक्: प्रथम ग्रन्थि: मोह-बन्धन | 107 |
| | मोह का स्वरूप | 107 |
| | यह बन्धन कैसे कटे? | 108 |
| | दक्षिणा दिक्: दूसरी ग्रन्थि : लोभ-बन्धन | 108 |
| | यह बन्धन कैसे टूटे? | 108 |
| | प्रतीची दिक्: तीसरी ग्रन्थि : काम-बन्धन | 109 |
| | उदीची दिक् चौथी ग्रन्थि : क्रोध-बन्धन | 110 |
| | ध्रुवा दिक्: पांचवीं ग्रन्थि बन्धन | 111 |
| | समझने के लिए कोष्ठक | 112 |
| | 'ऊर्ध्वादिक' : छठी अवस्था : निबन्ध | 113 |
| 13. | उपस्थान मन्त्र (नवीं सीढ़ी) | 116 |
| | प्रभु के सन्मुख | 116 |
| | बाह्य की विचित्र लीला | 118 |
| | मनुष्य-शरीर में प्रभु विचित्र लीला | 119 |
| | एक और विचित्रता | 123 |
| | प्रभु-उपासना का फल | 124 |
| 14. | गायत्री मन्त्र : आत्म-समर्पण (दसवीं सीढ़ी) | 125 |
| 15. | नमस्कार-मन्त्र प्रभु के चरणों में (ग्यारहवीं सीढ़ी) | 128 |
| 16. | परिशिष्ट-1 : योगयुक्त संयम | 129 |
| 17. | परिशिष्ट-2 : सन्ध्या कोर्स | 133 |
| | शिशु वर्ग | 134 |
| | कुमार वर्ग | 135 |
| | युवक वर्ग | 135 |
| | गृहस्थी अथवा कालजियेट | 135 |
| | बी.ए. | 136 |
| 18. | परिशिष्ट-3 : सन्ध्या-मन्त्र तथा भावार्थ | 138 |
| | मनसा परिक्रमा मन्त्र | 140 |
| | उपस्थान मन्त्र | 141 |
| | गायत्री मन्त्र | 142 |
| | विश्व-कल्याण के लिए प्रार्थना | 142 |


CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

# प्रार्थना

**ओ३म् वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुवीदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत्।**
**वि मे मनश्चरति दूरआधीः किं स्विद् वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये॥**
(ऋ. मण्डल 6, सूक्त 9, मं. 6)

हे प्रभो! मेरे दोनों कान इधर-उधर भाग रहे हैं, और दोनों आखें भी दूर-दूर जा रही हैं। हृदय में स्थिति जो यह ज्ञानरूपी आपकी ज्योति है, वह भी मन की चञ्चलता के कारण बुझी-सी जा रही है। अत्यन्त दूर के विषयों में लगकर यह मेरा मन दूर-दूर विचरण कर रहा है।

हे प्रभो! ऐसी चञ्चल दशा में मैं आपका आश्रित (उपासक) आपसे क्या कहूँ और क्या मनन तथा चिन्तन करूँ? कैसे मनन करके आत्मसाक्षात् करूँ?

प्रभो! मैं तो तेरा आश्रित हूँ। मेरे मार्ग के काँटे, कूड़ा-करकट आप ही साफ करें, जैसे माता-पिता पुत्र के आगे से साफ करते हैं।

**ओ३म् शम् !**

**-टेकचन्द (प्रभु आश्रित)**

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

# भूमिका

## आपबीती

प्रिय पाठक-वृन्द! इस पुस्तक को आरम्भ करने से पहले मैं कुछ अपनी बीती बताए देता हूँ। आपमें से भी कई सज्जन इस प्रकार की अवस्थाओं में से गुज़रे होंगे। उनका एक बार फिर स्मरण आ जाना लाभदायक होगा।

सन् 1897 ई. में, जब मैं अभी प्रायः गयारह बारह वर्ष की आयु का ही था, तो अलीपुर तहसील (जि. मुजफ्फरगढ़) में पूज्य पं. गिरधारी लाल जी, आर्य प्रतिनिधि सभा के एक विद्वान् उपदेशक शास्त्रार्थ के लिए आये थे। उनके एक ही व्याख्यान से हज़ार के लगभग जनता ने मद्य-मांस त्याग दिया था। उस समय सन्ध्या-गायत्री पर उन्होंने जो व्याख्यान दिया था, उसमें से मुझे और कुछ भी याद नहीं, सिवाय इसके कि मैंने और मेरे सहपाठी कई बालकों ने, तत्काल उपदेश के बीच में बैठे हुए, गायत्री मन्त्र और सन्ध्या के तीन मन्त्र स्वर्गीय पूज्य दरबारीलाल जी अध्यापक की सहायता से याद कर लिए थे। फिर मैं और मेरे साथी प्रतिदिन कुएँ की माल (चबूतरे) पर बैठ कर बहते हुए रहट के शब्द में मग्न होकर जप तथा सन्ध्या किया करते थे। न मैं हिन्दी जानता था, न मुझे मन्त्र ही शुद्ध आते थे, अर्थ तो दूर रहे! (हमारे इलाके में आर्य समाज का अभी आरम्भ ही था, अतः स्कूलों में हिन्दी का रिवाज़ भी न था।) परन्तु उस समय ऐसा आनन्द आता था, जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। कई वर्ष तक इस अबोध अवस्था में ही मैं जप और सन्ध्या बड़े प्रेम से करता रहा।

फिर जब सन् 1909 में मैं नौकर हो गया, तो अपनी बैठक की छत पर बड़े प्रेम से सन्ध्या के मन्त्र उच्चस्वर से बोलता और उसी में ध्यान जमा रहता। सन् 1909 के उपरान्त शहरी जीवन हो जाने पर भी मैं

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सन्ध्या-हवन तो नियमपूर्वक करता था, परन्तु उसमें समय न लगता था; थोड़े समय में ही समाप्त कर लेता था।

1916 से व्यवहारिक जीवन हो जाने से यह अवस्था हो गई कि जब सन्ध्या करने वाले और भी साथी होते, तो मैं अपनी जगह पर बैठा रहता और वे अपनी जगह। सन्ध्या तो समाप्त कर ली होती थी, किन्तु बहुत शीघ्र, पाँच मिनट में ही समाप्त हो जाने के कारण, दूसरों से पहले उठ खड़ा होने में लज्जा आती थी कि 'ये क्या कहेंगे, सन्ध्या बस पाँच मिनट में ही समाप्त कर ली?' वास्तव में वे बेचारे भी, मेरे समान इसी विचार में रहकर लज्जावश न उठते थे और अन्त में सबको ही जान-बूझकर देर से उठना पड़ता था। अब सन्ध्या में आनन्द भी न आता था। उपदेशक लोग कहते थे कि अर्थ-सहित सन्ध्या करने में दिल लगता है, इसलिए अर्थ भी कई बार याद करता, परन्तु भूल जाता। फिर जब कभी सब मिलकर उच्चारण से सन्ध्या करते, तो मैं सौभाग्य समझता कि एक तो काम जल्दी हो गया, दूसरे मक्कारी भी न करनी पड़ी। अतः यही प्रयत्न करता कि सन्ध्या इकट्ठी-सी मिलकर किया करूँ, परन्तु उस समय मिलकर सन्ध्या करने का भाव ही मालूम न था। समाज में भी रविवार के दिन मिलकर ही सन्ध्या होती थी, तो यही कहते सुना कि जिनका शब्द-उच्चारण अशुद्ध होगा वह इस प्रकार शुद्ध हो जाएगा, किन्तु इस सम्मिलित उच्चारण से भी किसी की शुद्ध न हुई और न मेरी हुई।

सन् 1922 ई. तक यही दशा रही। फिर जब मैने प्राणायाम आदि योग-क्रियाएं पूज्यपाद श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज की पवित्र शरण में जाकर सीखीं और पूज्य श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज की रचित 'सन्ध्या योग' नामक पुस्तक का स्वाध्याय किया, तो उस समय योग की और अधिक रूचि हो गई और सन्ध्या-समय भी मैं वही मन्त्र बोलने लगा, जिनके अर्थ आते थे, शेष नहीं। तथा गायत्री का जप भी अधिक करने लगा, तो गायत्री की महिमा का भान होने लगा।

सन् 1929 ई. में जब पं.सातवलेकर जी की रचित **सन्ध्या अनुष्ठान** पुस्तक पढ़ी तो सन्ध्या के सब मन्त्रों के भावार्थ याद कर लिये और सब मन्त्रों के भाव से सन्ध्या करता रहा। 1931-32 अर्थात् **वर्षभर** के मौन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


एकान्त-व्रत में मैंने सन्ध्या के दूसरे तथा तीसरे अर्थात् **अंगस्पर्श** और मार्जन मन्त्रों, मनसा-परिक्रमा के मन्त्रों में से केवल **योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयम्** भाग का मनन किया। इससे मुझे बड़ा भारी लाभ हुआ और वही है।

## मेरी सन्ध्या का आरम्भ

1934 ई. में मुझे सन्ध्या के दूसरे मन्त्र का योग के प्रथम अंग 'यम-नियम' से सम्बन्ध का भान होने लगा और ज्यों-ज्यों मैं प्रतिवर्ष एकान्त, अदर्शन तथा मौनव्रत कुछ-कुछ काल के लिए करने लगा और इस मन्त्र को योग का साधन जानकर उसपर विचार करने लगा, तो मेरे सामने यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि इस अंगस्पर्श मन्त्र में तो बल और यश की इच्छा की गई है। इसमें चार स्थान (1) वाक्, (2) प्राण, (3) चक्षु और (4) श्रोत्र तो छेदवाले हैं और अन्य चार (1) नाभि, (2) हृदय, (3) कण्ठ तथा (4) शिर ढकने वाले। यह ऐसा क्यों है? तब मुझे यह श्लोक याद आया-

1. **अन्दर के पट तब खुलें, बाहर के जब दे।**
2. **चश्म बन्दो, गोश बन्दो, लब बिबन्द!**
3. **गर न बीनी सरे हक़, बरमन बिखन्द॥**

जब ये शब्द गूँजने लगे तो यह प्रश्न पैदा हुआ कि सन्ध्या-समय बाहर के छिद्र तो हम बन्द कर बैठते हैं, चाहे पूरे-पूरे बन्द हों या न हों, परन्तु अन्दर के तो खुलते ही नहीं? बस, इसी विचार ने मेरी सारी वृत्ति इस मन्त्र पर लगा दी और लगातार विचार करने पर यह तत्त्व भी मुझपर खुल गया कि इस मन्त्र के ठीक-ठीक अनुष्ठान से मनुष्य को इसका रहस्य किस प्रकार ज्ञान होता है और प्रभु-भक्ति में कितना प्रेम अपने-आप ही भर जाता है। इसी का आगे इस पुस्तक में उल्लेख करने का मैं प्रयत्न करूँगा, क्योंकि यह सर्वसाधारण की समझ से बाहर है।

कुछ वर्ष हुए सन्ध्या से पहले तीन मन्त्रों के संबंध में एक बार धांदरा चक 66 (लायलपुर) में मैं कुछ सुनाता रहा था। श्री भक्त सोनूराम जी बी.ए., बी.टी हैडमास्टर महोदय ने छपवाने के लिए उनके नोट भी लिये थे और मेरी कई पुस्तकों में कुछ ऐसा उल्लेख भी कर दिया था, परन्तु किसी कारण से वह अब तक नहीं छपवा सके।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


**भक्तिभाव**—यज्ञ तथा सन्ध्या में साधारण आर्यसमाजियों की रूचि तथा ध्यान बहुत कम है। पहले आरम्भकाल और अब के समय में धरती आकाश का अन्तर पड़ गया है। जिस काल में मुझे स्वयं अर्थ जाने बिना ही बड़ा आनन्द आता था, उस काल में मुझमें शुद्ध भाव और पवित्र परमाणु काम कर रहे थे। प्रचारक थोड़े थे, परन्तु वे प्रचार-भाव (मिश्नरी स्पिरिट) के थे। उन्हें वैदिक धर्म के फैलाने की ऐसी चिन्ता और लग्न थी, जैसे किसी के अपने बाप की या अपने घर की खेती सूख रही हो। जो अनपढ़ या पढ़े-लिखे लोग उस समय आर्यसमाज में प्रवेश करते थे, वे बिना प्रवेशपत्र (फार्म) भरे या प्रतिज्ञा किये ही प्रवेश करते थे, और उनकी आस्तिकता तथा श्रद्धा हृदय के फार्म पर अंकित हो जाती थी। उनका जीवन-मरण सच्चाई के लिए होता था।

मैं उस समय बालक ही था, परन्तु मेरे साथ मिलकर बड़ी आयु के धनी-मानी तथा बूढ़े (उस समय न बाजा था न जोड़ी, परन्तु अपने तालियों को ही साज़ बनाकर) सब झूम-झूमकर जब बड़े प्रेम से समाज-मन्दिर में भजन गाते थे, तो आप रीझते और दूसरों को रिझा देते थे। उन्हें वह भजन साक्षात् प्रभु-भक्ति ही जान पड़ते थे। न वे लजाते थे, न वे अकड़ते थे।

**पवित्र परमाणु**—प्रत्येक आर्य में मिश्नरी स्पिरिट भरी थी और उन्हें आर्य समाज रूपी सत्य सनातन वैदिक धर्म की शान का बड़ा ध्यान था। उनका जीवन आर्यसमाज में प्रविष्ट होते ही **अद्यमर्षण मन्त्र** के अनुसार पाप-विषयों को धो डालने वाला होता था। अतः वे शुद्ध भाव और प्रचारकों के शुद्ध परमाणु जनता में पवित्रता फैला देते थे। फिर उन्हें पवित्र मन से प्रभु-भक्ति में रस क्यों न आता?

ज्यों-ज्यों वह वायुमण्डल बदलता गया और जनता का प्रवेश आर्य समाज में बिना किसी सच्चाई या धार्मिक उद्देश्य के होता गया, वैसे-ही-वैसे पहले तो मिश्रित परमाणुओं से और फिर अशुद्ध परमाणुओं से आर्यजगत् आच्छादित होता गया और उसका विशेष प्रभाव हृदय तथा मस्तिष्क के विचारों पर पड़ने लगा। अब तो यह दशा है कि जब कोई सन्ध्या करता है तो 5 मिनट में ही समाप्त करके उठ बैठता है। यदि कोई देर लगाकर उठे और उसे सचमुच रस आ रहा हो, तो दूसरे कहते हैं कि यह दम्भ करता है। सन्ध्या तो 5 मिनट में समाप्त हो जाती है, यह घण्टे क्यों लगा देते हैं?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## यह पुस्तक लिखने की आवश्यकता

मुझे जहाँ-जहाँ यज्ञ कराने के लिए जाना पड़ा और प्रचार किया, वहाँ-वहाँ ही यज्ञ और सन्ध्या में लोगों में कुछ-कुछ श्रद्धा और रुचि उत्पन्न होने लगी और वे अपने-आपको अब तक भूल में पड़ा हुआ समझने लगे, तो मैने इस वर्ष मई तथा जून के दो मास इसीलिए अपनी कुटिया (टोबा टेकसिंह) पर रहने का निश्चय किया और समाचारपत्रों में यह दे दिया कि 'जिन सज्जनों की सन्ध्या, गायत्री तथा यज्ञादि का नियमपूर्वक अनुष्ठान करना हो, वे इन दो मास में यहां आ जायें' परन्तु शर्त यही थी कि "उन्हें इस कार्य की सफलता के लिए पहले एक सप्ताह मौन रहना होगा, ताकि वे अपनी व्यवहारिक वृत्तियों के संस्कारों को कुछ ढीला कर सकें और मौन रहने तथा जाप करने से उनके हृदय पवित्र हो जायें तो वे अनुष्ठान-क्रिया को शीघ्र ही ग्रहण कर सकें।

किन्तु 24 मई तक केवल एक ही युवक आया, वह भी इस अभिप्राय से नहीं, अपितु वैसे ही सत्संग के लिए आया अतः मैंने इतनी प्रतीक्षा के अनन्तर यही उचित समझा कि अपनी आत्मशुद्धि के लिए व्रत कर लूं, सो सात सप्ताह का जो अवकाश मेरे पास शेष था, उसे मैंने व्रत में लगा दिया और इस व्रत में ही अपनी उन अनुभूत क्रियाओं को एक सम्वाद के रूप में लिख डाला। इस प्रकार मैंने मई तथा जून मास की इस ड्यूटी (कर्त्तव्य) के ऋण से उऋण होने में सन्तोष किया।

**कृतज्ञता प्रकाश**– इस व्रत में मैंने अथ **ब्रह्मयज्ञ, सन्ध्या सुमन, सन्ध्या रहस्य, सन्ध्या के तीन अंग,** और **सन्ध्या उपासना विधि** तथा **सोम सरोवर** का भी कुछ थोड़ा-सा स्वाध्याय किया और मुझे उन सबसे बड़ा लाभ हुआ। इस पुस्तक में भी कहीं-कहीं मैंने उनके ही सुन्दर शब्द और पवित्र भाव प्रकट किये हैं, जिनके लिए मैं (इन पुस्तकों के लिए) उन लेखकों का हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

मेरे इस व्रत में मेरे प्रेमी सत्संगी ला. गिरधारीलाल जी मल्होत्रा, भूतपूर्व सुपरिटेडैण्ड अकाउटैंट जनरेल आफ़िस लाहौर उनके पुत्र बाबू मुनीलाल जी रेंजर वन-विभाग (जंगलात) तथा उनके परिवार ने जो सेवा की, और मेरे व्रत के निर्विघ्न समाप्त होने में जो सहायता दी, उसके लिए

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मैं उन सब का भी धन्यवाद देता हूँ और प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि वह उन्हें अपने आशीर्वाद से शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक उन्नति से मालामाल करे! ओम् शम्!

**टेकचन्द (प्रभु आश्रित)** हमीरपुर (काँगड़ा)

प्रथम आषाढ़ सं. 1997 वि., तदनुसार 14 जून सन् 1940 ई, तिथि नवमी, शुक्ल पक्ष, शुक्रवार के शुभ दिन आरम्भ किया है।

(1) इस पुस्तक-सहित जो भी पुस्तकें मैंने प्रभु-प्रसाद पाकर लिखी हैं, या लिखता हूँ, वे बड़ी साधारण भाषा होती है। उनके शीर्षक (सुर्खियाँ), क्रम (तरतीब) तथा लिपि की शुद्धि मेरे प्रेमी मित्र भक्त सोनूराम जी बी.ए.बी.टी. हैडमास्टर करते रहते हैं। उनके छपवाने और प्रूफ आदि देखने भालने तथा अन्य सब प्रबन्ध ला. रामचन्द्र जी मनचन्दा तथा ला. जोधाराम जी बुद्धराजा क्लर्क रेलवे, लाहौर करते हैं। मैं इन तीनों का बड़ा आभारी रहता हूँ। मेरे पास सिवाय हार्दिक धन्यवाद देने के और कुछ सामर्थ्य नहीं है। परमात्मदेव उनके पवित्र विचारों को सदा उन्नत करते रहें और अपने आशीर्वाद से उन्हें परिवार-सहित श्रद्धा, प्रेम और भक्ति-धन से भरपूर कर दें। यही मेरी हार्दिक अच्छा और कामना है।

(2) रायज़ादा शान्तिनारायण जी ने भी इस पुस्तक के भाषा-संशोधन में बड़ी सहायता की है, उनका भी हार्दिक धन्यवाद करता हूँ।

(3) अपने सुपुत्र चि. लखपति जी शास्त्री, विद्यावाचस्पति, संस्कृत-अध्यापक डी.ए.वी. हाईस्कूल मिंटगुमरी को भी आशीर्वाद देता हूँ कि उन्होंने "सन्ध्या" शब्द की निरुक्ति मुझे कर दी है और श्री जगन्नाथ जी, स्नातक गुरुकुल का भी धन्यवाद है कि उन्होंने इस निरुक्त को ठीक जानकर हर्ष प्रकट किया और उसमें कुछ वृद्धि भी कर दी।

(4) कविराज पंडित दीनानाथ जी शास्त्री वैद्यवाचस्पति आयुर्वेदाचार्य, प्रोफैसर सनातनधर्म प्रेमगिरि आयुर्वेदिक कालिज लाहौर का भी हार्दिक धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने इस पुस्तक के अनुवाद का संशोधन किया है और प्रूफ़ भी देखे हैं।

**टेकचन्द (प्रभु आश्रित)**

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

# मनुष्य-जीवन-यात्रा के लिए

# सन्ध्या का सुन्दर क्रम

## स्व. दयानन्द सरस्वती जी महाराज का परमोपकार

| क्रम | उद्देश्य अथवा साधन | सन्ध्या मंत्र | योग की परिभाषा में योग अंग का नाम |
|---|---|---|---|
| प्रथम उद्देश्य | सुख तथा शान्ति की प्राप्ति (शारीरिक नीरोगिता, मानसिक स्थिरता, आत्मिक पवित्रता) | आचमन | उद्देश्य |
| द्वितीय साधन | बलवान् तथा यशस्वी जीवन (शारीरिक तथा मानसिक बल ही इसका परम साधन है।) | अंगस्पर्श | यम-नियम |
| तृतीय साधन | इस बल तथा यश की स्थिरता के लिए पवित्रता आवश्यक है। | मार्जन | आसन |
| चतुर्थ साधन | पवित्रता प्राप्ति के लिये तप आवश्यक है | प्राणायाम | प्राणायाम |
| पंचम साधन | तप की सफलता के लिए मन को पापों तथा विषयों से दूर रखना आवश्यक है। | अघमर्षण 3 मन्त्र | प्रत्याहार |
| षष्ठ साधन | पाप से मनुष्य कैसे बच सकता है? जब अपने मन का सब द्वेष तथा अभिमान प्रभु-अर्पण कर दे | मनसा परिक्रमा 6 मन्त्र | धारणा |
| सप्तम साधन | द्वेष तथा अहंकार से बचने का फल! प्रकृति से ऊपर, अपने आत्मस्रोत में स्थिति, निर्भयता, अदीनता तथा स्वाबलम्बता की प्राप्ति। | उपास्थान 4 मन्त्र | ध्यान |
| अष्टम साधन | उपर्युक्त सब गुणों को प्राप्त करके पवित्र तथा निष्काम बुद्धि से प्रभु-अर्पण हो जाना। | गायत्री | समाधि |
| अन्तिम साधन | -धन्यवाद-धन्यवाद, नमस्कार | | |

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# विषय-प्रवेश

## नई और पुरानी सभ्यता की खिचड़ी

रेलवे-वर्कशाप में एक इञ्जीनियर साहब निकले। झट अपने साईकल पर सवार होकर घर पहुँच गए। घर के अन्दर आँगन में साईकल खड़ा कर दिया और आप रसोई की ओर गये। कोट, पतलून, बूट हैट पहने हुए थे। रसोई के द्वार में बूट-समेत एक पैर रक्खा, दूसरा अभी बाहर ही था कि रसोई में धर्म-पत्नी दिखाई दी। उसे देखकर बोले—"प्रिया जी, नमस्ते!"

देवी बड़ी सुशील और कुलीन थी। अपने पतिदेव को देखकर उठ खड़ी हुई और बड़े सम्मान से हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

बाबू—कहो, प्रिया जी! कोई वस्तु तो बाज़ार से लाने को नहीं?

देवी—नहीं महाराज! आप विश्राम कीजिये!

बाबू—चाय तैयार है?

देवी—जी हाँ!

बाबू जी अपनी बैठक में चले गए, जिसे उनके आने से पहले ही उनकी धर्मपत्नी ने साफ़-सुथरा करके उनके अनुकूल बना रक्खा था। कुर्सी पर बैठ गए। हैट मेज़ पर रख दी। कोट खूंटी पर लटका दिया इतने में एक बड़े थाल (Tray) में चाय के प्याले आदि और प्लेट में धरी कोई अन्य खाने की चीज़ भी आ गई।

देवी—पंखा लेकर अपने पति को झलने लगी और बाबू जी आनन्द से खाने-पीने और बातें करने लगे।

बाबू—अब पंखा लगवाना चाहिए। मालिक-मकान तो मानता नहीं अतः अपने पास से ही एक मेज़ का पंखा (Table Fan) ले आएँ। आपको बड़ा कष्ट होता है।

देवी—हँस पड़ी और कहने लगी—पंखा तो आप अवश्मेव मोल ले आएँगे, मगर इससे दो नुकसान होंगे। एक तो रुपये चट हो जाएँगे, दूसरा मेरा धर्म।

बाबू—(चकित होकर) भला रुपये तो चट हुए, किन्तु आपका धर्म

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कैसे चट होगा? यह बात मेरी समझ में नहीं आई।

देवी–मेरा धर्म तो आपकी सेवा करना है। फिर यह मैं कैसे कर सकूँगी?

यह उत्तर सुनकर बाबू हँस पड़े और बोले–बड़ी सतयुग की-सी बातें करती हो!

देवी मुस्करा के चुप हो गई बाबू जी कुछ खा-पीकर और रूमाल से मुख पोंछ-पोंछकर समाचार पत्र पढ़ने में लग गये। धीरे-धीरे शाम हो गई।

रसोई तैयार हो जाने पर देवी ने कहा–रसोई तैयार है। आप सन्ध्या कर लीजिये।

## बाबू सन्ध्या

बाबू–तो आप भी आ जायें! दोनों इकट्ठे ही सन्ध्या कर लेते हैं। आप मन्त्र बोलती जाएँ मैं साथ-साथ कहता जाऊँगा।

देवी–नहीं महाराज! आप तो बाबुओं की-सी सन्ध्या करेंगे घरड़-फरड़! मुझे उसमें आनन्द नहीं आएगा, और वैसे भी देर लगेगी। मैं आपको खिला-पिलाकर निश्चिंत होकर ही अपनी सन्ध्या कर लूंगी।

बाबू (मुस्कराकर)–अच्छा-अच्छा, जैसी तुम्हारी इच्छा! हम भी तुम्हारा पल्ला पकड़कर पार लग जाएँगे।

बाबू जी कसे-कसाए बड़े आराम से बैठे थे, कहने लगे–यह धर्म भी क्या स्यापा है? अब बूट उतारने पड़ेंगे। हाथ-मुंह भी धोना होगा। तब कहीं सन्ध्या होगी। अच्छा प्रिया जी! जल तो भेज दीजिये।

बाबू जी ने कोट उतारा, परन्तु जुराबें और पतलून वैसे ही पहने रहे। देवी जी जल ले आईं तो बाबूजी ने कहा–नौकर के हाथ भेज देती।

देवी–मैं भी तो आपकी सेविका ही हूँ।

बाबू जी–फिर नौकर किसलिए है? आपके आराम के लिए ही तो नौकर रक्खा गया है?

देवी– मुझे भी तो उससे बहुत आराम है। मेरे लिए ही आपने उसे रक्खा है, अपने लिए तो नहीं?

यह सुनकर बाबू जी हँस पड़े और सन्ध्या करने बैठ गए। पांच-सात

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मिनट में ही बाबू जी ने सन्ध्या समाप्त कर ली और फिर बोले–प्रिया जी! खाना कहाँ देगी? अन्दर या बाहर?

देवी–जहाँ आज्ञा हो।

बाबू अच्छा मैं ही बाहर आ जाता हूँ। आप टेबल (मेज़) लगाकर आइये! मैं बूट पहन लूँ।

देवी जी ने कुर्सी और मेज़ बाहर लगा दी और बाबू जी बूट पहनकर कुर्सी पर आ विराजे। देवी जी ने दाएँ हाथ में पानी का लोटा और बाएँ हाथ में चिलमची पकड़ ली। तौलिया मेज़ पर धरा ही था। हाथ धुलाने लगी। बाबू जी ने हाथ धोकर हँसते-हँसते कहा–थैंक्स (धन्यवाद)!

देवी जी हँस पड़ीं। देवी जी ने भोजन परोस बड़ी श्रद्धा और आदर से सामने लाकर रख दिया और उसी प्रकार पंखा हाथ में लेकर सेंवा करने लगी।

बाबू जी ने मुस्कराते हुए प्रेम से कहा–अब मैं आपकी सेवा करूँगा। आप मुझ पर इतना भार न चढ़ाइये!

देवी ने पूछा–आप मेरी क्या सेवा करेंगे?

बाबू बस चिकनी-चुपड़ी बातें बनाकर खाना भी खाता रहूँगा। सारा दिन आप घर की चारदीवारी में घुटी रहती हैं। अब मैं आपका दिल बहलाऊँगा। इसके सिवा और मैं क्या कर सकता हूँ?

देवी–धन्यवाद! कोटानुकोट धन्यवाद!

बाबू बड़े हँसमुख और सरल स्वभाव के सज्जन थे। बातें करते-करते भोजन समाप्त कर लिया। जल पीकर कुरला (चुल्लू) किया, तौलिये से हाथ पोंछे, अन्दर जाकर छड़ी उठाई और कहने लगे–अच्छा प्रिया जी! आपको तो अभी सन्ध्या करनी है। नहीं तो मैं आपको भी बाग़ में सैर कराने ले जाता। मुझे तो आप पर बड़ा तरस आता है। गरमी का मौसम है। सारा दिन घर में घुटी रहती हो। क्या अच्छा होता यदि आप भी मेरे ही साथ सन्ध्या करके खाना खा लेतीं! नौकर पीछे बरतन माँजता रहता और हम दोनों सैर कर आते। कुछ तो जीवन का आनन्द मिलता! वास्तव में सन्ध्या का समय वही था जब मैंने की थी। अब भी भला कोई समय है?

देवी–भगवन्! आपकी सेवा भी तो मेरी सन्ध्या का एक भाग है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


आप मेरे पतिदेव है। मेरे साक्षात् देवता तो आप ही हैं। आप मेरा पालन-पोषण और रक्षण करते हैं। फिर आपकी पूजा न करूँ तो कितनी कृतघ्नता होगी? प्रभु-पूजा तो स्वीकार होगी भी या नहीं, इसका क्या निश्चय? वह तो इस आँख से दिखाई भी नहीं देते, किन्तु आप तो मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। हाँ, यदि आप भी मेरे साथ वैसी ही प्रेमपूर्वक सन्ध्या करते जैसी मैं करती हूँ, तो मैं उस समय बैठ भी जाती। फिर इकट्ठे ही निबटकर सैर को भी जा सकते थे। परन्तु ऐसे तो कठिन है।

बाबू (उपहास भरे स्वर में)—आप तो बड़ी ज्ञानी हैं। यही सोचकर तो मैंने आपसे विवाह कराया है कि आप मेरी इस कमी को पूरा कर देंगी, क्योंकि पुरुष स्त्री की और स्त्री पुरुष की कमी को सब प्रकार पूरा करते रहते हैं। मेरी इस कमी को यदि आपने पूरा कर दिया तो आपकी बदौलत मेरी पूजा भी प्रभु को स्वीकार हो जायेगी।

## देवी की सन्ध्या और प्रार्थना

यह कहकर बाबूजी तो सैर को चल दिये और देवी जी हाथ-मुँह धो, कपड़े बदल (पूजा के कपड़े पहन), आसन बिछा, पाली (चौकड़ी) मारकर, प्रभु के दरबार में उपस्थित हो, सन्ध्या करने लगी। पर्याप्त देर तक सन्ध्या करने के उपरान्त बड़े प्रेम तथा श्रद्धा से उन्होंने प्रार्थना इस प्रकार की—'हे मेरे नाथ! मैं आपका बारम्बार कोटानुकोट धन्यवाद गाती हूँ। आप मुझे अपने पवित्र चरणों में वास दे रहे हैं। मुझे आपने अच्छे माता-पिता दिये और उत्तम कुल में उत्पन्न किया। जो थोड़ी-सी विद्या मुझे प्राप्त हुई, धन्यवाद है कि मुझे वह आपके चरणों में ले-जाती है। मुझे ऐसे पवित्र पतिदेव की शरण दी, जो हँसमुख, सरल स्वभाव और मुझ पर सदा दयालु रहने वाले हैं। मैं आपके आशीर्वाद से उनकी छत्रछाया में बड़ी सुखी हूँ। परन्तु इस समय मैं इस निस्सहाय अवस्था को अनुभव करती हूँ, कृपा करके मेरे प्राणप्यारे पति के मन में भी आध्यात्मिक भूख उत्पन्न कीजिये। उन्हें भी अपने पवित्र नाम का दान दीजिये! अपने पवित्र चरण-कमल में उनकी भी प्रीति की लगन लगाइये! उनकी सहायता बिना मैं अधूरी हूँ, निकम्मी हूँ। दया कीजिये, जिससे मुझ कोमल बूटी का

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सिंचन करने और हरा-भरा रखने वाले माली मेरे पतिदेव भी आपकी छत्रछाया को प्राप्त हों।

प्रभो! मैं आपकी शरण आई हूँ। आपसे रक्षा और सहायता चाहती हूँ। विवाह के समय मैंने जो प्रतिज्ञा करके कि–

**ओं प्रमे पतियानःपन्था कल्पतां शिवा अरिष्टा पतिलोकं गमेयम्।।**

आपसे यह प्रार्थना की थी कि–

**शिवा अरिष्टा पतिलोकम्।**

अर्थात् मेरे पति का जो मार्ग (जीवन-पथ) है, वैसा ही मेरा भी बने, जिससे मैं उनसे सब प्रकार का सुख पाती हुई निश्चिंत होकर पूरी शान्ति से, सबके पति आप परमात्मा को प्राप्त हो सकूँ।

अतः हे प्रभो! मैं आपको उस समय तक कैसे स्वीकार हो सकती हूँ, जब तक मेरे पतिदेव पर भी आपकी दया न हो। उनके स्वीकार हो जाने पर ही तो मेरी भी स्वीकृति सम्भव है। अन्यथा मैं अभागिन आपके इस सौभाग्य को कैसे प्राप्त करूँगी, यह मेरी समझ में नहीं आता।

**ओम् इमं में वरूण श्रुधी हवमद्या च मृऽय। त्वामस्यु राचके।।**

हे वरूण देव! मेरी इस प्रार्थना को सुनो और हमें सुखी करो। मैं अपनी मनोकामना की पूर्ति-हित बार-बार आपकी स्तुति करती हूँ।

ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## पहली सीढ़ी

# अशान्त मन

कुछ दिन इसी प्रकार बीत गए। एक दिन जब बाबू जी अपने काम से लौटे तो उन्होंने अपनी धर्म-पत्नी से **नमस्ते** तो की, परन्तु कुछ उदास-से चुपचाप बैठ गए। देवी ने कुछ मिनट तो यह प्रतीक्षा की कि वह चाय माँगेंगे, किन्तु जब उन्होंने न माँगी, तो वह स्वयं चाय लेकर बैठक में पहुँची और जाकर यों बोली—सुख तो है? आज जी कैसा है?

बाबूजी—आज चित्त बड़ा अशान्त है।

देवी—क्यों?

बाबूजी—यह भी ज्ञात नहीं। दिन-भर काम पर जी लगा नहीं। किन्तु समय तो बिताना ही था, बिता आया। ड्यूटी देनी थी, दे आया ।

देवी—कोई पत्र आया है, या किसी से कोई बात हो पड़ी? या कोई सरकारी बाधा खड़ी हो गई? आखिर कोई तो कारण अवश्य होगा?

बाबू जी—मैंने कहा तो है कि सारा दिन जी नहीं लगा, किन्तु कारण भी कुछ नहीं जान पड़ता। न कोई पत्र ही आया है, न किसी से कुछ बात ही हुई है। कोई सरकारी बाधा भी नहीं पड़ी, न कोई ऐसी आशंका ही है।

देवी—अच्छा ! तो फिर क्या चिन्ता है?.....उ. कभी-कभी ऐसा हो ही जाता है। चाय तैयार है, पी लिजिये और वहम् (भ्रम) न कीजिये। फिर चलिये, जरा सैर कर आएँ, तबीयत हरी हो जायेगी।

चाय पीकर दोनों सैर को चल दिये, परन्तु कोई भी प्रकृतिक वस्तु उस दिन बाबूजी का मन अपनी ओर आकर्षित न कर सकी। कुछ देर घूम-फिरकर दोनों घर लौट आए और साधारणतया अपने-अपने कामों में लग गए।

दो-चार दिन इसी प्रकार अशान्ति में बीते। आखिर एक दिन देवी ने

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कहा–आप आठ-दस दिन की छुट्टी ले लें तो कहीं तीर्थयात्रा ही कर आएँ, क्योंकि शरीरिक रोग के लिए पहाड़ की वायु और मानसिक रोग के लिए तीर्थ-स्थान का वास बहुत लाभकारी होता है।

बाबू जी बड़े सरल स्वभाव थे। यह विचार उनको भी पसन्द आ गया। अगले ही दिन जाकर छुट्टी के लिए प्रार्थनापत्र लिख दिया। दो-चार दिन में छुट्टी स्वीकार हो गई। दोनों ने तीर्थ-यात्रा की तैयारी की और रात ही को गाड़ी पर चढ़कर प्रातःकाल एक तीर्थ स्थान पर पहुँच गए।

## शान्ति की खोज

सन्ध्या-समय था। पाँच बजे थे। देवी ने कहा–चलो ज़रा सैर कर आएँ। शायद नदी के किनारे किसी साधु-महात्मा के दर्शन हो जायें।

अस्तु, दोनों घूमते-फिरते प्रायः 6 बजे एक ऐसे स्थान पर पहुँचे, जहाँ इर्दगिर्द चारदीवारी थी। अन्दर एक छोटी सी रमणीक वाटिका में फूस की एक कुटिया थी। वाटिका का द्वार खुला था। अन्दर गए तो वहाँ बिल्कुल चुपचाप सन्नाटा-सा छाया हुआ था।

कुटिया के पास पहुँचे तो उसका छोटा-सा द्वार बन्द दिखाई दिया। इधर-उधर कई छोटी-छोटी खिड़कियाँ अथवा रौशनदान-से लगे थे। झाँककर अन्दर देखा तो एक श्वेत केश (सफेद ऋषि) मुनि ध्यान में मग्न बैठे थे। कुटिया के बाहर चटाई पड़ी थी। स्थान बड़ा सुन्दर, साफ-सुथरा और लिपा-पुता था। दोनों वहाँ बैठ गए। धीरे-धीरे और लोग भी युवा, वृद्ध, पुरुष-स्त्री, लड़केवाले आने लगे। चारदीवारी में पैर धरते ही सब चुपचाप हो जाते थे।

इधर-उधर फिर-फिराकर कोई कहीं, कोई कहीं, जहां जिसका जी चाहा बैठता गया। कोई कुछ पढ़ने लग गया, कोई सन्ध्या और कोई जप करने लगा। बाबू जी और उनकी धर्मपत्नी धीरे-धीरे यों बातचीत करने लगे–

बाबू जी–स्थान तो बड़ा रमणीक है। यहाँ आते ही सचमुच मेरे मन की सब अशान्ति दूर हो गई। अब चित्त बड़ा प्रसन्न है।

देवी यह सुनकर बड़ी खुश हुई। आनन्द-भरे स्वर में बोली–प्रभु का लाख-लाख धन्यवाद है! आइये, हम भी यहाँ सन्ध्या कर लें। देखिये,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कई सज्जन सन्ध्या कर रहे हैं। जान पड़ता है कि जब महात्मा जी बाहर निकलेंगे तो सत्संग भी अवश्य होगा, इसीलिए लोग एकत्रित हो रहे हैं। चटाइयाँ भी बहुत-सी पड़ी हैं।

दोनों ने नदी में हाथ-मुँह धोकर सन्ध्या आरम्भ कर दी।

मुनि जी ने सात बजे के लगभग द्वार खोला और बाहर आ गए।

## सत्संग

सब लोग जो वहाँ आये हुए थे, आ-आकर और दोनों हाथ जोड़कर **नमस्ते** कर-करके चटाइयों पर बैठते गए। ये दोनों भी वहाँ पहुँच गये और बड़ी श्रद्धा से **नमस्ते** करके एक ओर जा बैठे। नवयुवकों में कई-एक कालिज के विद्यार्थी जान पड़ते थे, जो शायद गर्मियों की छुट्टियाँ वहाँ काटने आए थे। उनमें से एक बोला—"महाराज! आपने तो सन्ध्या करते हुए बड़ी देर लगा दी। हम तो कभी के कर बैठे! जितने भी आदमी यहाँ आते गए, सबने ही सन्ध्या की और सबकी ही समाप्त हो गई। परन्तु आपने तो पूरे दो घण्टे ही लगा दिये। क्या आपकी सन्ध्या कोई और सन्ध्या है, या आप समाधि में चले गए थे?

वानप्रस्थी मुनिजी (मुस्कराते हुए)—पुत्र! तुमने कौन-सी सन्ध्या की है?

युवक—वही वैदिक सन्ध्या। **शन्नो देवीरभिष्टये** वाली!

## १. सन्ध्या शब्द के अर्थ

वनी—ठीक! ठीक!! किन्तु तुम्हें **सन्ध्या** शब्द के अर्थ भी आते हैं?

युवक—नहीं, महाराज!

वनी (और लोगों से)—आप में से किसी भाई को आते हैं?

यह प्रश्न सुनकर कुछ देर तक तो सब लोग चुप रहे, अन्ततः वही देवी (जिसके साथ हम यहाँ पहुँचे हैं) हाथ जोड़कर बड़े नम्र भाव से बोली—भगवन्! **सन्ध्यायन्ति—इति सन्ध्या** अथवा **सन्ध्यायते वा परं ब्रह्म यस्यां सा सन्ध्या** अर्थात् जिस विधि से भली-भाँति परमेश्वर का ध्यान करते हैं या किया जाय, वही सन्ध्या है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वनी–शाबाश पुत्री, शाबाश!

सब नवयुवक उस देवी की ओर आश्चर्य से देखने लगे। आखिर उनमें से एक मनचला न रह सका, वह बोला–बहन जी! आपने कहाँ तक शिक्षा पाई है? हम तो कालजियेट (कालिज के विद्यार्थी) है, छुट्टियाँ गुज़ारने और सत्संगादि का लाभ उठाने वहाँ चले आए हैं। हममें से कोई एफ.ए. में पढ़ता है, कोई बी.ए. में। एक-दो एम.ए. में भी पढ़ते हैं।

देवी (लज्जाभरे स्वर से)–भ्राता जी! मैं तो बहुत साधारण-सा पढ़ी हूँ। मैंने संस्कृत में प्राज्ञ, हिन्दी में रत्न और अंग्रेजी में केवल मैट्रिक पास किया है। सन्ध्या के मन्त्रों के अर्थ भी पूरे-पूरे नहीं आते। सन्ध्या शब्द के ये अर्थ भी एक उपदेश से सुने थे, वे याद आ गए। नहीं तो स्कूलों और कालिजों में यह कौन बतलाता है?

## सन्ध्या, प्रार्थना और स्तुति

युवक–तभी तो महाराज, मैं अपनी ही भाषा में प्रार्थना कर लिया करता हूँ। जिस चीज़ की समझ भी नहीं, अर्थ भी नहीं आते, यह भी पता नहीं कि हम क्या कर रहे हैं, उसे तोते के समान रट लेने से भ़ला क्या लाभ?

वनी–तुम कौन-सी प्रार्थना करते हो?

युवक–एक ओंकार, सत्त नाम, कर्त्ता पुरख, निभौ, निर्वैर अकाल मूरत, नीजोओ, सैभंग, गुर प्रसाद, जप....।

वनी–बेटा! भाव तो तुम्हारा निश्चय शुद्ध है, परन्तु यह प्रार्थना तो नहीं, और न यह तुम्हारी अपनी भाषा ही है।

युवक–फिर यह क्या है महाराज, यदि प्रार्थना नहीं तो?

वनी–यह प्रभु की स्तुति है। अच्छा, अब यह बतलाओ कि इनमें कौन-सा शब्द आप की अपनी भाषा अर्थात् पंजाबी का है? हमें तो ये सभी शब्द संस्कृत के और वे भी वैदिक संस्कृत के जान पड़ते हैं। निःसंदेह इनका उच्चारण कुछ-कुछ बदला हुआ है।

युवक (आश्चर्य से)–क्या सब-के सब?

वनी–हाँ, सब-के-सब! नहीं तो 'सैभंग' का अर्थ ही आपमें से कोई बतला दे। आप तो सब-के-सब पंजाबी हैं।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सब चुप रह गए। अन्ततः एक सज्जन ने कहा—महाराज! हमने तो यह शब्द कभी बोला नहीं और कभी सुना भी नहीं।

वनी—सुन लिया भाई? यहाँ भी तुम्हारी भूल ही है। अपनी भाषा तो वह है, जिसे हम सहज में समझ सकें, जिसके लिए हमें कोई कोष (डिक्शनरी) न देखनी पड़े। अच्छा बेटा, अब तुम बतलाओ इस शब्द के अर्थ।

युवक—महाराज! अर्थ तो मुझे भी नहीं आते।

दूसरा युवक—किन्तु महाराज! क्या प्रार्थना कुछ और है और स्तुति और?

## तीन मार्ग

वनी—हाँ बेटा! इन दोनों में बहुत भेद है और सन्ध्या इन दोनों से ही अलग है। वास्तव में ये तीन भाग हैं—एक कर्म, दूसरा उपासना, तीसरा ज्ञान। फिर उपासना के तीन भाग हैं—प्रार्थना, स्तुति और सन्ध्या।

प्रार्थना तो वह होती है जिसमें भक्त या उपासक अपने प्रभु से कुछ याचना करता है, माँगता है, जैसे—प्रभो मुझे बल दो! विद्या दो! ज्ञान दो! सुख दो! धन और ऐश्वर्य आदि की याचना, ये सब प्रार्थना कहलाती हैं।

स्तुति वह है जिसमें प्रभु के गुणगान किये जाते हैं, जैसे—प्रभो! आप दयालु हैं, न्यायकारी हैं, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् हैं इत्यादि। या जैसाकि इस युवक ने कहा है एक ओंकार सत्तनाम, इसमें एक ओंकार के अर्थ हैं उस प्रभु का नाम **ओ३म्** है जो एक है। आगे उसके दूसरे विशेषणों का वर्णन है, अर्थात् वह प्रभु जिसका नाम **ओ३म्** है, वह सत्य (सत्तनाम) है। वही सृष्टि का कर्त्ता पुरुष (कर्त्ता पुरख) है। किसी से उसे भय नहीं (निर्भौ), किसी से वैर नहीं (निर्वैर) वह मृत्यु से परे (अकाल मूरत) है। अशरीरी है (अजोनी, अयोनि), जन्म से रहित है। **सै भंग** शब्द वास्तव में **स्वयम्भू** है, जिसके अर्थ हैं, अपने-आप होने वाला। वही **गुरप्रसाद** अर्थात् सच्चा गुरु है, उसी का जाप (जप) करना उचित है, अर्थात् प्रभु के विशेष गुणों की सराहना और गुणों का वर्णन ही **स्तुति** कहलाती है।

अब रह गई **सन्ध्या** इसमें प्रभु का ध्यान किया जाता है।

तीसरा युवक—महाराज! मैं तो सन्ध्या आदि पर कोई विश्वास

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


(फेथ) रखता नहीं। मैं तो यह समझता हूँ कि हमें सदैव शुभ कर्म करते रहना चाहिए। परमात्मा को हमारी सन्ध्या अथवा प्रार्थना की कोई आवश्यकता ही नहीं और न हमें ही है। यदि हमारे कर्म बुरे हों, तो भी क्या इनसे कोई लाभ हो सकता है? हाँ यदि समाज के विचार से या मजहब (धर्म या सम्प्रदाय) के नाम पर कुछ करना आवश्यक हो तो अपनी मातृभाषा अर्थात् हिन्दी, पंजाबी या किसी अन्य स्थानिक भाषा में ऐसे शब्दों में प्रार्थना कर लेनी चाहिए जो अपनी अन्तरात्मा से निकले।

क्षमा करना ! मैं नास्तिक नहीं। ईश्वर को माननेवाला हूँ और प्रार्थना भी प्रतिदिन करता हूँ, किन्तु न तो **विश्वानिदेव** आदि मन्त्रों से ही और न **शन्नो देवी** के मन्त्रों से। वरन् मैं प्रतिदिन अपने ही शब्दों में प्रभु से यह प्रार्थना करता हूँ कि–

**"हे प्रभुदेव! मुझे शक्ति दो कि मैं संसार का उपकार तथा सेवा कर सकूँ। मुझे सुमति दो कि मैं संसार के कल्याण और भलाई के लिए कुछ सोच सकूँ, और कोई बुरा विचार मेरे मन में पैदा न हो। मेरे शरीर और शरीर की समस्त इन्द्रियाँ पवित्र हों, सुदृढ़ हों और निरोग रहें, जिससे मैं यह सद्व्यवहार सदा करता रहूँ। जो पदार्थ मेरे जीवन के लिए आवश्यक हों, वे सब-के-सब मुझे प्रदान कीजिये, जिससे मैं स्वयं उनसे सुख भोगूँ और दूसरों को भी सुखी करूँ।**

**ओं शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!**

वनी–मैं तुम्हारी बातों से बड़ा प्रसन्न हूँ। तुम्हारे भाव बड़े श्रेष्ठ हैं। तुम बहुत समझदार जान पड़ते हो। किन्तु फिर भी, मैं तुममें थोड़ा-सा परिवर्तन देखना चाहता हूँ, यदि पसन्द आए और उसमें कुछ लाभ समझो, तो कर लो, नहीं तो न सही, यही पर्याप्त है। जो भी हो, तुम्हारे भाव मुझे बड़े प्यारे लगते हैं।

युवक–अवश्य महाराज, अवश्य! जब आप मेरे हित की बात करते हैं, तो मैं क्या इतना मूर्ख हूँ कि अपनी भलाई की बात को भी न सुनूँगा और उसे पसन्द न करके, उसके अनुकूल कार्य न करूँगा?

वनी–अच्छा, पहले यह बतलाओ कि तुम क्या काम करते हो?

युवक–मैं बी.एस-सी. (B. Sc.) में पढ़ता हूँ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## सन्ध्या-प्रार्थना कब स्वीकार समझी जाय?

वनी–यह तो तुम जानते ही हो कि जो लोग मन्त्रों की सहायता से सन्ध्या या प्रार्थना करते हैं, उनका भी इन शब्दों से यही अभिप्राय होता है, जो तुमने कहा है। परन्तु वे इन मन्त्रों के अर्थों को जानते नहीं और आप उनका ठीक-ठीक आशय जानकर उसे अपने शब्दों में कह देते हो। किन्तु सन्ध्या में और भी बहुत-सी जानने योग्य बातें, तुम्हारे इन शब्दों से बढ़कर हैं। निःसन्देह सन्ध्या करने वाले शब्दों के अर्थ तो नहीं जानते, परन्तु उनकी प्रभुभक्ति-भावना शुद्ध ही होती है। कर्त्तव्य-पालन और परमात्मा की समीपता से पवित्र बनने की इच्छा भी उनमें होती है और ऐसी ही आपकी भी है, अतः यदि इन दोनों में से किसी में प्रभु के गुण आ रहे हैं या उन गुणों को कोई धारण कर रहा है और उनके अनुकूल कार्य भी कर रहा है, तो समझो कि यह सन्ध्या या प्रार्थना चाहे यह वैदिक शब्दों में हो या अपनी भाषा में, स्वीकार हो गई है, अन्यथा नहीं और दोनों ही कोरे-के-कोरे हैं।

## कर्म मार्ग

यह बात भी तुम्हारी ठीक है कि हमें शुभ कार्य करने चाहियें। भक्ति और पूजा का आशय भी यही है कि मनुष्य के कर्म शुभ होते हैं। यदि कर्म शुभ नहीं बनाए, तो सन्ध्या आदि में केवल समय ही व्यर्थ खोया।

## कर्म, उपासना और ज्ञान

अब तो बातें विशेषतः विचारणीय हैं। एक तो यह कि कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीनों के फल जुदा-जुदा हैं। शुभ कर्म से संसार के प्राणी प्रसन्न होते हैं। उपासना-भक्ति से प्रभु प्रसन्न होते हैं और ज्ञान से अपनी आत्मा प्रसन्न होती है। अतएव मनुष्य को नित्यप्रति शुभ कर्म अर्थात् सद्व्यवहार, दीन-दुःखी की सेवा इत्यादि तथा प्रभु-भक्ति अवश्य करनी चाहिये और साथ ही इससे अपनी ज्ञान-वृद्धि भी।

## मनुष्य–मनुष्य में अन्तर

जो ये तीनों काम रीति, नीति और प्रीति से धर्म समझकर करेगा, वही देवतापुरुष बन जायेगा। जो मनुष्य ये दोनों कार्य अर्थात् भक्ति और कर्म

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


करता है, वह पहले नम्बर पर है और श्रेष्ठतम पुरुष है; जो प्रभु-भक्ति नहीं करता और दिन-रात शुभ कार्य करते रहना ही अपना कर्त्तव्य समझता है, वह दूसरे नम्बर और उत्तम पुरुष है; जो प्रभु-भक्ति मन से करता है किन्तु कोई शुभ कर्म नहीं करता, वह तीसरे नम्बर पर और मध्यम पुरुष है; और जो प्रभु-भक्ति दिखावे के लिए करता है और शुभ कर्म भी दिखावे के लिए करता है, वह चौथे नम्बर पर है और अधम पुरुष है।

परन्तु ये सभी अपने जीवन को उन्नत करते रहते हैं। इनके अतिरिक्त (अ) जो मनुष्य केवल इसलिए भक्ति करता है कि उसके दैनिक पापों में कुछ कमी होती रहे या भक्ति से उनका उतारा होता जाए, किन्तु वह पाप छोड़ना नहीं चाहता, वह जीवन में असफल (फेल) है और पहले नम्बर पर है। (आ) जो आदमी केवल लोगो पर विश्वास जमाने के लिए प्रभु-भक्ति करता है और उस आड़ में लोगों को ठगता है, मक्कारी और छल से पाप करता है, वह असफल है, दूसरे नम्बर पर है। (इ) किन्तु जो पुरुष दिन-रात पाप-ही-पाप करता है और प्रभु का नाम लेने तक का विचार भी कभी मन में नहीं लाता, वरन् सदैव पाप में ही डूबा रहता है, वह अति अधम है।

अतः सभी मनुष्यों को, और विशेषकर नई सभ्यता वालों को सदैव आदर्श जीवन वाले महापुरुषों को अपने सामने रखना चाहिये और उसी अनुमान से अपने कर्मों की नाप-तोल करके दिन-रात परोपकार करते रहने के लिए नित्यप्रति ईश्वर से सहायता की प्रार्थना करनी चाहिये और जो भी शुभ कर्म वह अपने शरीर से कर सके, उनके लिए सदैव प्रभु का धन्यवाद करते रहना चाहिये। यही उनकी प्रभु भक्ति है।

यह याद रहे कि भक्ति और परोपकार दोनों सत्कर्म हैं। (अ) जो मनुष्य नित्यप्रति प्रभु-भक्ति करता है किन्तु परोपकार या सेवा का कोई काम प्रतिदिन नहीं करता, वह उस आदमी से फिर भी अच्छा है, जो नेक काम या परोपकार कभी-कभी करता है, किन्तु प्रभु-भक्ति कभी नहीं करता है। इसलिए सभी को थोड़ा-बहुत देश, काल और अपनी शक्ति-अनुसार नित्य-प्रति परोपकार और सेवा का काम करते रहना चाहिए।

(आ) जो मनुष्य केवल प्रभु-भक्ति करता है, वह भी केवल एक ही शुभ कर्म करता है।

(इ) इस भक्ति के साथ-ही-साथ जो नेक काम और उपकार भी

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


करता है, वह दो शुभकर्म करता है।

इसलिए जिस आदमी से जिस दिन ये दोनों कार्य इकट्ठे न बन पड़ें उसे यह समझना चाहिये कि आज मुझमें जीवन और प्राण सर्वथा नहीं, और मैं केवल शव (मुर्दा) के समान हूँ।

(ई) जो मनुष्य इन दोनों में से कोई-सा एक शुभ कर्म करे, चाहे वह भक्ति हो या सेवा-कर्म, वह अपने-आपको अधमरा जाने।

(उ) और जो दोनो ही कर सके, वही अपने को जीवित समझें। सदैव अपने मन में यह विचारकर कार्य करने वाला ही संसार में उत्तम जीवन व्यतीत कर सकता है।

## जीवित वाणी

अब दूसरी बात यह है कि प्रभुपूजा किस भाषा या किन शब्दों में हो? यही ठीक है कि परमात्मा तो सभी भाषाओं को जानते हैं और सबके भावों को तो समझते हैं, परन्तु बेटा! वाणी-वाणी का प्रभाव भी अलग-अलग होता है। प्रत्येक मनुष्य का उद्देश्य, भाव अथवा लक्ष्य भी बड़ा उच्च और सर्वश्रेष्ठ होना चाहिये। केवल विवशता, समय काटना, आलस्य तथा प्रमाद ही नहीं होना चाहिये।

आज जो साधारण शब्द महात्मा गांधी जी के मुखारविन्द से निकलते हैं, समस्त संसार उन शब्दों को ध्यान से सुनता और नोट करता रहता है, तथा उचित समय पर उन्हें प्रमाणरूप से पेश करता है। किन्तु वही शब्द यदि मैं या आपमें से कोई साधारण व्यक्ति कहे तो उसका मूल्य कुछ भी नहीं पड़ता।

इसी प्रकर प्राचीन सन्त-महात्माओं के वाक्य भी आज संसार रटता है, प्रत्युत उन्हीं के द्वारा प्रभु का पूजन भी होता है। वे शब्द हैं तो साधारण, परन्तु उनमें आत्मा भरी पड़ी है, अर्थात् हमारे शब्द निर्जीव होते हैं और उनकी वाणी जीवित मानी जाती है और एक-दो वर्ष तक ही नहीं वरन् युगों तक वही वाणी अमरवाणी बनकर लोगों का कल्याण करती हैं उसमें कितना रस, कैसी मिठास और कितना प्रेम पाया जाता है। इसीलिए तो नित्यप्रति लोग उसे गाते हैं, और जितनी बार भी बोलो, उतना ही अधिक रस और आनन्द आता है।

इसका कारण केवल यही है कि वह उन पवित्र हृदयों से निकली हैं,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


जिन्होंने जन्म-जन्मान्तर की घोर तपस्याओं से अपने-आपको पवित्र कर लिया है और जिनमें प्रकाश हो गया है। उनके शब्द अनुभूत (कमाए हुए) और साक्षात् किये हुए हृदय से निकले हैं, इसीलिए वे रस तथा प्रभाव से भरपूर होते हैं।

अब इससे ऊँची वाणी वेद की पवित्र वाणी है जो निर्विकार, निरंजन, ज्योतिस्वरूप प्रभु ने स्वयं प्रदान की है। परन्तु किनको? उन महान् तपस्वी, परम पवित्र और महापुनीत महर्षियों के हृदयों में, जिन्हें आदिसृष्टि में बिना किसी गन्दगी और अपवित्रता के स्वयं प्रभु ने अमैथुनी सृष्टि के समय उत्पन्न किया, जिनके माता-पिता कोई मनुष्य नहीं थे वरन् स्वयं परमात्मा ही थे, जो शुद्ध तथा निरंजन हैं। उन्होंने यह वेदवाणी उस समय प्रदान की, जब और कोई भी शब्द संसार में नहीं आया था, न कोई और भाषा ही किसी मनुष्य, किसी जाति या किसी देश की थी। इसीलिए उस वाणी का नाम देववाणी अर्थात् दिव्यगुणवाली वाणी कहा जाता है, जिसमें किसी भी प्रकार की कमी, दोष, कचाई या मिलावट नहीं, इसलिए पीछे से इसका नाम **संस्कृत** अथवा संस्कार की हुई अर्थात् माँजी हुई वाणी पड़ गया।

यह वाणी प्राकृतिक भाषाओं की वाणी नहीं। कारण, हमें प्रकृति से ऊपर ऊँचा चढ़ना है। अतः हमें इस देववाणी को अवश्यमेव अपनाना चाहिए।

## शब्द में बोलने वाले का आकार

एक और बात बड़े मर्म की है, उसे ध्यान से सुनो! प्रत्येक शब्द में उसके बोलने वाले का आकार गुप्त रहता है। जैसे बहुत दूर एक पुरुष वृक्ष काट रहा है। हमारे नेत्रों ने अभी उसको देखा नहीं, केवल शब्द ही आ रहा है। हम तत्काल कह देते हैं कि कोई मनुष्य कुल्हाड़े से वृक्ष काट रहा है। जो कुल्हाड़ा वृक्ष से लगकर यह शब्द उत्पन्न करता है उसका रूप तुरन्त हमारे मस्तिष्क में आ जाता है।

प्रतिदिन हम यह देखते हैं कि गृहस्वामी घर से बाहर किसी से बातें कर रहा है। उसका शब्द सुनकर ही बालक घर में बैठा यह कह देता है कि पिता जी आ गये, उनकी आवाज़ आ रही है। बालक ने यद्यपि देखा ही नहीं किन्तु शब्द सुनते ही उसके पिता का आकार उसके मस्तिष्क में आ गया।

हिन्दु गृहस्थ में प्रायः पुरुष जब घर में आते हैं, तो द्वार से बाहर ही

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


ज़ोर से खांसते हैं और उस खाँसने का शब्द सुनते ही घर में यदि कोई देवी नि:संकोच अवस्था में होती है, तो वह अपने वस्त्रादि सम्भाल लेती है या शीघ्र ही ओट में चली जाती है। कुछ लोग तो अपनी चाल से ही पहचान लिये जाते हैं। जहाँ इनके बूट की आवाज़ आई, घर के आदमी कह देते हैं **लो, अमुक आ रहे हैं!**

मैंने कई बार सुना है कि रेल के इंजन की आवाज़ सुनते ही रेलवाले आवाज़ को पहचानकर कह देते हैं कि **फोर्टीथ्री अप** (Forty Three up) या **ट्वैन्टी फ़ोर डाउन** (Twenty four down) आ रही है। मोटरवाले मोटर के हार्न (Horn –भोपू) का शब्द सुनकर दूर से ही बतला देते हैं कि अमुक साहब की मोटर आ रही है। इससे स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि शब्द में ही उसके बोलने वाले का आकर छिपा रहता है। अब तो अमरीका वालों ने रेडियो के साथ-ही-साथ "टेलिविज़न" (Televison) भी बना डाला है, जिसमें बोलने या गानेवाले के शब्द के साथ ही उसका आकार और उसके सब हाव-भाव भी साफ दिखाई देते हैं। अत: प्यारे भाइयो! यदि आप यह चाहते हैं कि आपको परमात्मा का साक्षात्कार हो और आप उसे अपने हृदय में अनुभव करने लगें, तो इस यथार्थ सत्य को गाँठ बाँध लें कि वेद के इन पवित्र शब्दों को परमात्मा ने स्वयं उन पवित्र ऋषियों के पवित्र हृदय में शब्दार्थ-ज्ञान के रूप में प्रकट किया था और इन शब्दों के द्वारा ही एक उपासक का साक्षात् सहज में कर सकता है। शर्त केवल यह है कि उसके मन में एक सच्ची लगन पैदा हो जाए।

## पिण्डे सो ब्रह्माण्डे

इसके अतिरिक्त एक और बात भी सदैव याद रक्खो! वह यह कि इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी है, वह मनुष्य के पिण्ड (शरीर) में भी है। यह ब्रह्माण्ड वेद का नक्शा (चित्र) और ठीक नक्शा है। मनुष्य के पिण्ड की रचना, नसनाड़ी, रंग-रेशा, तार-तार की बनावट वेद के पवित्र मन्त्रों की बनावट के ठीक समान है। यदि छन्दों तथा स्वरों का ज्ञान हो तो मनुष्य के जीवन-तन्तु शब्दों के वैसा ही बोलने और सुनने से निरोग रहें। यह तत्त्व भी गुप्त न रहे कि प्रत्येक वैदिक शब्द अपने-आपमें पूर्ण हैं।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


जिस शब्द से जो काम लिया जाता है, या जिस कार्य के लिए है, उससे उसका यही अर्थ भी निकलता है। किन्तु दूसरी भाषाओं के बोलने और लिखने में धरती आकाश का अन्तर है अर्थात् उनके शब्द तथा कार्य में बड़ा भेद है। जहाँ शब्द (वाक्य) और कार्य में भेद हो वह सत्य नहीं होता, असत्य होता है। उदाहरणरूप में अंग्रेजी के शब्द **लैफ्टिनैंट** (Lieutenant) को ही ले लीजिये, बोलने में तो यह **लैफ्टिनैंट** है, परन्तु लिखने में **ल्यूटिनैंट** आता है। मानो स्वरों के भेद को छोड़कर **फ** भी इसमें कहीं नहीं, परन्तु बोला अवश्यमेव जाता है। इसी प्रकार नाइट (Knight) शब्द में **के** (k) **एच** (h) और **जी** (g) स्पष्ट धरे हैं, किंतु बोले नहीं जाते। ऐसे ही फ़ारसी-अक्षर अलिफ़ (।) में केवल **अ** अक्षर है, परन्तु बोला जाता है **अलिफ**। इसमें न जाने यह **लिफ** कहाँ से और क्यों आ गया? इसी प्रकार दूसरी भाषाओं के अक्षरों और शब्दों को भी परख लो, फिर संस्कृत-लिपि के अक्षरों और उसके शब्दों पर विचार करो।

देखो! उर्दू में **कंगन** बोलने और लिखने में कितना भेद है? अतः जो भाषा अपने ज्ञान और कर्म में एकता नहीं रखती, वह अवश्यमेव अशुद्ध अर्थात् रजोगुणी या तमोगुणी है। वह सतोगुणी नहीं मानी जा सकती।

हिन्दी में जैसा लिखा जाएगा, वैसा ही बोला जाएगा। यह नहीं कि लिखा कुछ और जाय और बोला कुछ और। अतः अब आप यह स्वयमेव निर्णय कर लें कि प्रार्थना किन शब्दों और किस भाषा में होनी चाहिये और हमें किस लिपि को श्रेष्ठता देकर अपनाना चाहिए।

ये बातें हो रही थी कि इतने में कई वानप्रस्थी और ब्रह्मचारी आ गए और प्रणाम करके बैठ गए। मुनिवर ने दूसरे लोगों को सम्बोधन करके कहा—अब आप जाइये! आज का सत्संग समाप्त हुआ!

यह सुनकर एक युवक बोला—महाराज! हम यात्री हैं। यदि हमें स्थान मिल जाय तो यहाँ ही ठहर जायें और आपके सत्संग का भी परम लाभ प्राप्त करते रहें?

मुनि—यह आश्रम है। यहाँ वानप्रस्थी और ब्रह्मचारी रहते और अनुष्ठान करते हैं।

युवक—महाराज! हम भी तो ब्रह्मचारी ही हैं।

मुनि—क्षमा करना, यद्यपि आप लोग नियमपूर्वक विवाहित नहीं, परन्तु

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


ब्रह्मचारी भी नहीं कहला सकते। ब्रह्मचर्य की महिमा बड़ी पवित्र, उच्च और महान् है। क्या तुम इतना भी नहीं जानते कि उसके और तुम्हारे स्कूलों तथा कालिजों के नियमों में धरती-आकाश का अन्तर है? यहाँ का वायुमण्डल बड़ा पवित्र है। इसका यह थोड़ा-सा भाग ही (सत्संग के समय का) तुम्हारे लिए बड़ा पर्याप्त है। प्रातः-समय व सायं-समय जब जी चाहे आ जाया करो।

यह मीठी झाड़ सुनकर सब चुपचाप चले गए और रात्रि को विचार करने लगे कि सवेरे किस समय चलें?

एक ने कहा—सवेरा तो होने दो, अभी तो आए ही हैं। सवेरे खा-पी-कर चलेंगे। हमें तो मुनि जी से केवल वार्तालाप ही करना है, कोई अनुष्ठान तो करना नहीं।

दूसरा बोला—भाई! आए हैं तो कुछ लाभ उठा जाएँ। मुनि जी बड़ी वैज्ञानिक बाते बतलाते हैं।

तीसरे ने पहले युवक की ओर इशारा करते हुए कहा—भाई! यह सवेरे जाय तो जाय। महाशय आदमी हैं। हवन भी रोज़ करता है और इसे सन्ध्या तथा जप की भी बड़ी लग्न है। इसका पिता भी पक्का आर्यसमाजी, अपने नगर की समाज का प्रधान है। फिर इसने फिलासफी भी ले रक्खी है। इस विज्ञान से तो इसको बड़ा लाभ होगा। हमारा क्या है? सुना सुना, न सुना तो नही सुना। इसे तो सन्ध्या का रहस्य समझना है। इसीलिए तो संस्कृत और हिन्दी भी पढ़ता है। गुरुकुल की खाक छानी है। क्यों भाई भीमसेन! जाओगे न? क्या सलाह है?

अपने साथी के उपहास भरे और चुभते हुए शब्दों का भीमसेन पर कुछ उल्टा ही प्रभाव पड़ा और उन्होंने उसके इरादे को और भी पक्का कर दिया, अतः उसने गर्वपूर्ण स्वर में उत्तर दिया—"क्यों नहीं! तुम जो भी चाहो, कहा, मैं तो अवश्मेव जाऊँगा। मुझे आज भी बहुत-कुछ मिल गया है और मेरे बहुत से संशय निवृत्त हो गये हैं।

इस पर उसी विद्यार्थी ने कहा—अच्छा तो हम भी वहाँ अवश्यमेव पहुँचेंगे और तुम्हारे मुनि जी का ज्ञान-विज्ञान देखेंगे। ऐसे प्रश्न करेंगे कि वह भी याद रक्खेंगे।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

## दूसरी सीढ़ी

# सन्ध्या-सिद्धि

देवी तथा बाबू जी ने रात्रि का अपने डेरे में, जहाँ वे उतरे थे, यह विचार किया कि हमारी तो छुट्टी केवल दस दिन की ही है, जिसमें से एक दिन तो बीत ही गया, एक दिन जाने में लग जाएगा। केवल आठ दिन शेष हैं, अतः हमे सवेरे-सवेरे ही आश्रम पर पहुँच जाना चाहिये।

अस्तु, दोनों अगले दिन बड़े तड़के अपने डेरे से चल पड़े। किन्तु जब कुटिया पर पहुँचे तो वहाँ उनके भी पहले एक नवयुवक कापी हाथ में लिये बैठा था। वह भी **नमस्ते** करके बैठ गए। थोड़ी देर पीछे प्रायः छः बजे, कुटिया के अन्दर के भजन गाने की आवाज़ आने लगी। मुनिवर अपनी ध्यानक्रिया को समाप्त करके आनन्द से प्रभु-आराधना कर रहे थे:-

जब ग़म नहीं था तेरा, ग़म में पड़ा हुआ था।
ग़मगीन तेरे ग़म में, ग़म से बरी हुआ हूँ।।
जब फिक्र था न तेरा, फ़िक्रे लगी हुई थीं।
जब से है फ़िक्र तेरा, बेफ़िक्र हो गया हूँ।।
जब भय नहीं था तेरा, भयभीत हो रहा था।
जब भय हुआ है तेरा, निर्भय मैं हो गया हूँ।।
जब तक नहीं दिया धन, निर्धन बना हुआ था।
सब-कुछ तुझे ही देकर, अब मैं धनी हुआ हूँ।।
हँसता था रात-दिन मैं, दिल में खुशी नहीं थी।
रो-रोके तेरे ग़म में, अब तो खुश हो रहा हूँ।।

अन्तिम मिसरा (पद) गाकर ओम्-ओम् कहते हुए मुनिवर ने अपनी कुटिया के पट खोल दिये। ये तीनों झटपट अन्दर प्रविष्ट हुए और मुनिवर के पास जाकर प्रणाम करके बैठ गए। मुनिवर ने मुस्कराकर पूछा-बड़े सवेरे आ गये?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


देवी–हाँ महाराज! हमारी छुट्टी बहुत थोड़ी है, अतः हमें तो आपका पर्याप्त समय लेना है।

वनी (नवयुवक से)–और तुम भाई, कैसे आये? तुम्हारा नाम क्या है? क्या पढ़ते हो?

## सन्ध्या-शब्दार्थ-सम्बन्धी कुछ आवश्यक प्रश्न

नवयुवक–महाराज! मेरा नाम भीमसेन है। मैं एफ.ए.सैकिण्ड इयर में पढ़ता हूँ। प्रभु की कृपा से मैं सन्ध्या भी प्रतिदिन करता हूँ और जप भी। अग्निहोत्र किये बिना मैं रोटी नहीं खाता। परन्तु यह सब कार्य पाठ-मात्र ही होते हैं। आपके कलवाले उपदेश-अमृत से मेरे बहुत से प्रश्न हल हो गए, परन्तु कुछ अभी शेष हैं। इसलिए आज मैं इतने सवेरे आ उपस्थित हुआ हूँ। कल आपने कहा था कि वैदिक शब्द अपने-आपमें पूर्ण हैं, और सब भाषाएँ अपूर्ण। अतः मैं केवल अपनी जानकारी के लिए यह पूछना चाहता हूँ कि सन्ध्या शब्द यदि पूर्ण है तो इसके अर्थों में उन सभी प्रश्नों के उत्तर अपने-आप निकलने चाहियें, जिनका सन्ध्या से गहरा सम्बन्ध है, जैसे (1) सन्ध्या का अर्थ क्या है? (2) सन्ध्या क्यों करनी चाहिये? (3) किसकी करनी चाहिये? (4) किससे करनी चाहिये? (5) किसको करनी चाहिये? (6) किस समय करनी चाहिये? (7) कितनी देर तक करनी चाहिये? इत्यादि-इत्यादि।

वनी (प्रसन्न होकर)–शाबाश! शाबाश! अच्छे प्रश्न किये। सन्ध्या का अर्थ तो तुमने सुन ही लिया था–

**'सम्यक्तया ध्यायते या, सा सन्ध्या'**

भली प्रकार ध्यान करना, भलाइयों को ध्यान में रखना, भलाइयों का चिन्तन करना। अतः अब अपने दूसरे प्रश्न को लो।

## २. सन्ध्या क्यों करनी चाहिये?

मनुष्य का जब किसी से सामना हो और वह आप न बच सकता हो, तो उसे वही बचा सकता है जो उससे और उसके शत्रु दोनों से बलवान् हो, दोनों में सन्धि करा दे, जिसे शान्ति हो जाए। वह बलवान् भी ऐसा हो जो

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


न्यायकारी हो और पक्षपात से रहित हो। उसकी शरण लेने का नाम ही सन्ध्या, पूजा, भक्ति या उपासना है। परन्तु मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है मृत्यु। अतः मृत्यु से बचने के लिए, मृत्यु पर विजय पाने और सच्ची शान्ति, स्थायी सुख और आनन्द-प्राप्ति के लिए सन्ध्या की आवश्यकता है। अतः

**'सम् उत्कृष्टायै ध्यायते या, सा सन्ध्या**

अर्थात् उत्कर्ष (उन्नति) के लिए जिसका ध्यान किया जाता है, वह सन्ध्या है।

## ३. सन्ध्या किसकी करनी चाहिये?

जो प्रकृति और जीवन को अपने वश में रखने वाला है, अपने ध्यान में रखने वाला है और जो कर्मों का फल देने वाला है। इसलिये देखो

**'सकारेण जीवः, मकारेण प्रकृतिः, जीवःप्रकृतिश्च ध्यायति रक्षायै चिन्तयति यं स सन्ध्यारूपः परमेश्वरः'**

अर्थात्–**स** से जीव, **म** से प्रकृति और **ध्यायति** से ध्यान करना लिया गया है। एवं जीव और प्रकृति-रक्षा के निमित्त जिस ईश्वर का ध्यान करते हैं वह सन्ध्यास्वरूप ईश्वर है।

## ४. किससे या कैसे सन्ध्या करें?

बुद्धि से, अर्थात् बुद्धि से आत्मा को जोड़कर अथवा बुद्धि को सम करने के द्वारा सन्ध्या की जानी चाहिये।

**'सम संगतिः, कस्य संगतिः, केन?**

**बृद्धयाःसंगतिरात्मना, तया संगत्या ध्यायते या, सा सन्ध्या'**

अर्थात् सम् नाम संगति का है और वह संगति बुद्धि की आत्मा के साथ ली जाती है, एवं उस संगति (बुद्धि और आत्मा के संयोग) से जिसका करना किया जाता है वह सन्ध्या है।

## ५. किसको करनी चाहिये?

जो निर्बल और असमर्थ हो, जिसे शत्रु पर विजय पाने की आवश्यकता हो। वह कौन है? जीव–

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


**'सम् सन्तापः, कस्य संतापः काम-क्रोधादीनाम्।**

तस्य सन्तापस्य दूरी करणाय ध्यायते अति या, सा सन्ध्या।

अर्थात् सम् से सन्ताप गृहीत होता है और वह सन्ताप काम, क्रोध, लोभादि का लिया जाता है। उस सन्ताप को दूर करने के लिए जिसका ध्यान किया जाता है वह सन्ध्या है।

## ६ सन्ध्या किस समय करनी चाहिये?

जब सन्धि-बेला हो, जब प्रकाश और तम का मेल होनेवाला हो, अर्थात् रात और दिन की सन्धि-बेला को प्रभात कहते हैं, एवं दिन और रात की सन्धि-बेला को सायंकाल; या जब अपने प्राणों (सूर्य और चन्द्र-स्वर) की सन्धि का समय हो, अर्थात् जब प्राण सुषुम्णा से चलता हो, उस समय सन्ध्या करने में चित्तवृत्ति सम हो जाती है–

**'सम् सन्धि-बेलायां ध्यायते या, सा सन्ध्या।'**

अर्थात् सम् से सन्धि ली जाती है एवं दिन-रात वा सूर्यस्वर और चन्द्रस्वर की सन्धि के समय जिसका ध्यान किया जाता है वह सन्ध्या है।

तुम्हारा अब अन्तिम प्रश्न है–

## ७. सन्ध्या कितनी देर करनी चाहिये?

इसके दो उत्तर हैं–एक तो **'सम् सन्धि वेलायामेव ध्यायते या, सा सन्ध्या'** अर्थात् जितना काल सन्धि का होता है, जैसे युगों की सन्धि मन्वन्तर में मुक्ति और प्रलय की सन्धि का समय 1/12 भाग होता है, वैसे ही 24 घंटे के दिन-रात का बारहवाँ भाग एक घंटा प्रभात और एक घंटा सायं, जैसा कि ऋषि दयानन्द जी महाराज ने **सत्यार्थप्रकाश** में लिखा है कि **प्रत्येक आर्य को सन्ध्या न्यून-से-न्यून एक घंटा सवेरे और एक घंटा सायं करनी चाहिये।**

दूसरे, विशेष रूप से जितना अधिक समय भी अपनी भावना से कोई लगा दे, उसे वर्जित नहीं। सन्धि नाम ही शान्ति का है, जब तक मन शान्त रहे, उखड़े नहीं। प्रभु-शरण से बढ़कर दूसरी कौन-सी अमृतभरी गोद हो सकती है? यह प्रश्न भी फिर तुम्हें न करना पड़े कि–

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## ८. सन्ध्या का आसन कैसा हो?

लो, वह भी सुन लो!

**सम् सम्यक् प्रकारेण शरीरसौकर्येण च ध्यायते या, सा सन्ध्या**

अर्थात् 'शरीर, सिर, गरदन और छाती सम अथवा हमवार रहें।' इनमें से कोई भी अंग बहुत आगे को निकला हुआ अथवा पीछे को धँसा हुआ न हो। ऐसी स्थितियों में जिसका ध्यान किया जाता है, वह सन्ध्या है।

नवयुवक के प्रश्नों का इस प्रकार उत्तर देकर मुनि जी ने बाबू जी से पूछा—आप कुछ पूछना चाहते हैं?

बाबू जी ने देवी जी को संकेत करके कहा—'आप पूछें!'

देवी—महाराज! हमें अपनी तो कुछ समझ-बूझ है नहीं, प्रश्न क्या करें? सन्ध्या तो मैं भी करती हूँ और यह भी। परन्तु एक मन्त्र के पीछे दूसरा और दूसरे के पीछे तीसरा ही बोला जाता है। ध्यान कैसे और किसमें टिके, यह हम नहीं जानते। मैं तो जब छोटी-सी थी, तब कन्या-पाठशाला में एक बूढ़े विद्वान् सनातनी पंडित हमें पढ़ाया करते थे। मैं आर्यकुल-कन्या हूँ, अतः वह कहा करते थे कि 'आर्यों का परमात्मा निराकार है, वे बेचारे ध्यान कैसे टिका सकते हैं? जब आँख उसे देख नहीं सकती, और उसे कभी किसी ने देखा भी नहीं, तो अनदेखी वस्तु पर ध्यान केसे लगे? हम सनातनी लोग तो भगवान् की मूर्ति का ध्यान करते हैं। हमें कुछ सामने दिखाई तो देता है। इन आर्यों के सामने तो चौपट मैदान ही रहता है। उनका मन और कामों में भागता फिरता है, जिह्वा निस्संदेह मन्त्र रटती रहती है। फिर वे हमें कहते हैं कि तुम मूर्ति-पूजा करते हो, और हम कहते हैं कि तुम विषय-विकारों की पूजा करते हो। कभी पुत्र का ध्यान आ गया, कभी स्त्री का, कभी दुकान का, कभी ग्राहक का, कभी किसी लड़ाई-झगड़ा का! निराकार परमात्मा का ध्यान आता किसे है? सन्ध्या तो तब है, जब भलीभाँति परमात्मा का ध्यान किया जाय।'

उस समय तो मैं यह समझती थी कि यह केवल हमें चिढ़ाने और गिराने के लिए ऐसा कह रहे हैं, अतः उनकी बातों की ओर कुछ ध्यान न देती थी परन्तु अब जब से गृहस्थ में आई, और कुछ समझने-बूझने लगी, तो जान पड़ता है कि उन्होंने जो कुछ कहा था वह सच्चाई से सर्वथा ही

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


खाली नहीं था। सन्ध्या-समय सचमुच हमारा ध्यान तो होता है परन्तु नहीं लगता। दिल इधर-उधर भागता फिरता है। प्रभु का ध्यान तो होता ही नहीं।

वनी—बेटी! बात तो सोलह आने ठीक है। आजकल तो प्रायः सभी सन्ध्या करनेवालों का यही हाल है। किन्तु यह दोष न तो सन्ध्या के मन्त्रों का ही है और न किसी आर्य नेता का ही, यह तो सबका अपना-अपना ही दोष है। कारण, जिन साधनों से ध्यान टिक सकता है, वे साधन तो हम बरतते ही नहीं। मन्त्र बेचारे इसमें क्या करें? जब चलते ही हम उनके विपरीत हैं तो वे अपना प्रभाव कैसे दिखलावें?

देवी—फिर तो उन ब्राह्मण देवता की ही बात सिद्ध हो गई कि मूर्ति द्वारा ही पूजा करनी अच्छी है।

## सन्ध्या का साधन

वनी—जल्दी न करो, बेटी! पहले मैं नियम की एक बात बतला दूँ, फिर जैसा अच्छा लगे, वैसा करना। प्रत्येक दो पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है। अपने-आप कोई दो पदार्थ कभी नहीं मिल सकते। देखो, यह मकान बना हुआ है ईंटों से; एक ईंट पर दूसरी ईंट धरी गई है। परन्तु इनको मिलाने के लिए तीसरी चीज़ अर्थात् ग़ारा बीच में रक्खा गया है, तब यह मकान बना है। अब हम चाहते हैं कि पत्थरों का मकान बनावें और एक पत्थर के ऊपर दूसरा पत्थर रखते हैं। यदि उनमें हम ग़ारा लगा दें तो वे कभी नहीं जुड़ेंगे, अतः हम सीमेंट अथवा चूना लगाते है।। तब पत्थर पर रक्खा हुआ पत्थर जुड़ जाता है।

अब यह मेरा कपड़ा देखो! इसे सिलाया गया है, दर्ज़ी ने एक टुकड़े को दूसरे के साथ जोड़ा है। यदि वह इसमें ग़ारा या सीमेंट लगाता, तो क्या बन जाता?—नहीं। फिर इसमें उसने क्या किया? सूई में धागा डालकर उस धागे को उसने दोनों के बीच में पिन लगाकर, उन्हें सीकर जोड़ दिया। अब एक और उदाहरण लो! तुम्हारा कोई आभूषण टूट गया। उसके टुकड़ों को जोड़ने के लिए सुनार यदि धागा, ग़ारा या सीमेंट बरते तो क्या वे जुड़ जाएँगे? नहीं, कदापि नहीं। अतः वह उनमें धातु का टाँका लगाता है, और आभूषण जुड़ जाता है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


इसलिए यह एक नियम है कि दो पदार्थों के बीच में तीसरी चीज वह लगानी चाहिए जो उन दोनों का सम्मिलित अंश हो। ईंटें गारे से बनी थीं, इसीलिए उन्हें गारे ने जोड़ दिया। चूना और सीमेंट पत्थर का अंग हैं। कपड़ों का अंश सूत का तार और आभूषण का बना हुआ है, इसलिए धातु की आवश्यकता पड़ी।

## चित्त या ज्ञान

अच्छा, अब हम आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ना चाहते हैं अतः उन्हें जोड़ने वाली तीसरी चीज़ कोई ऐसी होनी चाहिये, जो दोनों में सम्मिलित हो। जीवात्मा सत् और चित् है। पररमात्मा सत्, चित्, आनन्द और प्रकृति केवल सत्। जीवात्मा तथा परमात्मा में सम्मिलित चीज़ हैं

चित्त नाम है ज्ञान का, इसलिए शास्त्रकारों ने यह बतलाया है कि–

**न ऋते ज्ञानेन मुक्तिः**

अर्थात् 'ज्ञान बिना मुक्ति नहीं, अथवा ज्ञान बिना प्रभु के दर्शन और मिलाप नहीं हो सकते। अब तुम ही बताओ कि ज्ञान निराकार है या साकार?–ज्ञान का कोई भी रूप नहीं, वह निराकार है; आत्मा भी निराकार है और परमात्मा भी निराकार, अतः **निराकार को ही निराकार से जोड़ने के लिए बीच की चीज़ साकार कैसे हो सकती है।**

## सत्य

बाबू महाराज! प्रकृति भी सत् है, जीव भी सत् है और परमात्मा भी सत् है, तो प्रकृति द्वारा जीव परमात्मा को क्यों नहीं पा सकता?

वनी–देखो, जैसे मनुष्य ज्ञान को धारण करने और ज्ञानानुसार चलने से परमात्मा को पा जाता है, वैसे प्रकृति द्वारा नहीं पा सकता। कारण, प्रकृति में जो सत् है वह **सत् निरन्तर** (कायम बिल-जात) है। वह सत् केवल प्रकृति की सम अवस्था अर्थात् उसके कारण रूप में ही होता है। तब वह न तो दिखाई ही देती है और न बाँटी ही जा सकती है। वास्तव में उसी अवस्था में उसे **प्रकृति** कहते हैं। वृक्ष, पहाड़, मूर्ति आदि **प्रकृति**

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


नहीं कहलाते; ये सब पदार्थ मूर्तिमान् प्रकृति की विकृति अर्थात् बदली या बिगड़ी हुई सूरतें हैं; उसका यथार्थ रूप नहीं। फिर जो पदार्थ विकारी(अदलने-बदलने वाला) हो, उससे सत्य ज्ञान कैसे हो सकता है? देखो, जिह्वा सब स्वादों को चखती है, किन्तु जब उसमें विकार पैदा हो जाये तो उसे मीठी चीज़ भी कड़वी जान पड़ती है। आँख सब रूपों को देखती है, परन्तु जब उसमें पीलिया रोग (यकीन) हो जाये तो श्वेत वस्तु भी पीली ही दिखाई देती है। इस प्रकार ज्ञान नहीं, वरन् अज्ञान ही जीव तथा प्रकृति का सम्मिलित गुण हो जाता है।

प्रकृति की सहायता से भी यदि कोई ब्रह्म को देखना चाहे तो देख सकता है परन्तु तब, जब वह अवस्था नितान्त प्रकृति के समान जड़ बना ले, सर्वथा प्रभु के अधीन हो जाय, उसी के संकेत और प्रेरणा पर अपनी गति-प्रगति रक्खे।

दूसरी बात यह समझो कि गारे में मिट्टी और जल दोनों मिले थे, नहीं तो यदि हम दो ईंटों में केवल मिट्टी रख दें तो भी व न जुड़ेंगी। यदि केवल जल ही रख दें तो भी उनका मिलाप नहीं हो सकता। कारण, वे दोनों ईंटें भी तो मिट्टी और जल मिलाकर बनाये हुए गारे से ही बनाई गई हैं। ऐसी ही सत् प्रकृति से यह शरीर बना है, अतः शरीर द्वारा ही ज्ञान प्राप्त करके आत्मा परमात्मा के दर्शन कर सकता है, और किसी प्रकार का साधन नहीं। इसलिए **चित् और सत् दोनों मिलकर ही प्रभु के मिलाप का साधन बन सकते हैं।**

## सन्ध्या तथा ज्ञान

देवी–महाराज! अब यह तो समझ आ गई कि मूर्ति आदि का साधन व्यर्थ है, किन्तु ध्यान जो नहीं टिकता?

देवी ये बातें कर ही रही थी कि इतने में वे कलवाले शेष युवक भी आ पहुँचे और प्रणाम करके बैठ गए, जिससे सबका ध्यान उनकी ओर आकर्षित हो गया और कुछ समय के लिए सन्नाटा छा गया। जब कोई न बोला.तो वह अपनी भाषा में प्रार्थना करने वाला (कलवाला) युवक बोला– "महाराज! कल आपने कहा था कि प्रत्येक शब्द में शब्द करने वाले का

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


आकार रहता है। यह तो ठीक समझ में आ गया, किन्तु जिस बालक ने आवाज़ सुनकर यह कह दिया था कि पिताजी आ गए, और उसके पिता का आकार भी उसके मस्तिष्क में आ गया था, उसने तो अपने पिता को देखा हुआ था, इसलिए वह पहचान गया, परन्तु जो व्यक्ति किसी को पहले न जानता हो, वह उसकी आवाज़ कैसे पहचानेगा? हम भी तो प्रभु को नहीं जानते, कभी पहले उसे देखा भी नहीं, फिर इन शब्दों से हमें प्रभु का ज्ञान कैसे होगा?"

वनी—पुत्र ने पिता को जाना हुआ था यह ठीक है, परन्तु कैसे?

युवक—अपनी आँखों से देखा था और बुद्धि से समझा था।

वनी—ये दोनों कारण (साधन) क्या हैं?

युवक—ज्ञान-इन्दियाँ।

वनी—तो मानो ज्ञान प्राप्त करने का साधन ज्ञान-इन्द्रियाँ हैं। ज्ञान ही से किसी की पहचान हो सकती है, अतः मनुष्य को ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

युवक—फिर सन्ध्या की क्या आवश्यकता पड़ गई, जब ज्ञान से ही प्रभु को जाना जाता है?

वनी—आवश्यकता पड़े तो करो, न पड़े तो न करो। तुम ज्ञान से ही प्रभु को प्राप्त कर सकते हो।

युवक—फिर उसे ढूँढ़ने कहाँ जाएँ, वह तो सर्वव्यापक कहा जाता है?

वनी—प्रभु को जानने या ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं, केवल अन्तःकरण को शुद्ध करने की आवश्यकता है। आत्मा के लिए परमात्मा का दर्शन तो एक पारितोषिक (इनाम) मात्र है, उन समस्त प्रयत्नों का—जो उसे स्वयमेव मिल जाता है, जैसे मैले वस्त्र में उसकी सफेदी छिपी हुई है। वस्त्र की मैल निकाल दो, सफेदी अपने-आप दर्शन दे जायगी, उसे ढूँढ़ने या कहीं से लाने की कोई आवश्यकता नहीं, या, जैसे एक विद्यार्थी का कर्त्तव्य प्रयत्न करना है और परीक्षा देना है, पास (उत्तीर्ण) होने और सबसे अच्छे नम्बर पाने पर सर्टिफिकेट, अथवा डिग्री (प्रमाणपत्र अथवा उपाधि) या पारितोषिक तो उसे अपने-आप ही मिल जाता है, ऐसे ही मनुष्य का काम केवल अन्तःकरण की शुद्धि के लिए प्रयत्न करना ही है। जब अन्तःकरण शुद्ध हो गया, तब आत्मा और परमात्मा के दर्शन अपने-आप ही हो जाते हैं।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## शुद्धि

युवक–अन्तःकरण कैसे शुद्ध हो?

वनी–शुभ कर्मों से।

युवक–फिर भी सन्ध्या की तो आवश्यकता न रही?

वनी–घबराओ नहीं, यह आवश्यकता भी सिद्ध हो जाएगी। अच्छा, यह बतलाओ कि (दीवार की ओर संकेत करके) यहाँ आप अपना मुखड़ा देख सकते हैं?

युवक–नहीं, किन्तु दर्पण (शीशे) में देख सकता हूँ।

वनी–यदि दर्पणा मैला हो तो?

युवक–तब भी नहीं देख सकूँगा। दर्पण की मैल उतारकर ही देख सकूँगा।

वनी–यदि दर्पण साफ हो, मगर हिलता-डुलता हो तो?

युवक–तब भी नहीं देख सकूँगा।

## शान्ति, एकाग्रता, प्रेम और पवित्रता

वनी–अन्तःकरण के पाप तो शुभ कर्मों से धुल जाएंगे, किन्तु मन का स्वभाव है चंचल, हिलना-डुलना। उसे शान्त करने की भी बड़ी आवश्यकता है। यह तो शांत होगा प्रभु-भक्ति से। इसके सिवाय और कोई साधन नहीं। जैसे शीशा यदि साफ भी हो और एक स्थान पर स्थित भी, किन्तु टुकड़े-टुकड़े हो रहा हो, तो आपको उसमें एक नहीं, किन्तु अनेक शक्लें दिखाई देंगी, अतः उसे टुकड़ों से रहित करने की भी आवश्यकता है। इसी का नाम है 'प्रेम'। **अन्तःकरण शुद्ध होगा शुभ कर्मों से, शान्त होगा एकाग्रता से और एकाग्रता होगी प्रेम से, किन्तु प्रेम पवित्रता के बिना नहीं रह सकता और पवित्रता बिना ज्ञान, सत्य ज्ञान तथा शुद्ध ज्ञान के स्थिर नहीं रह सकती।** अतः अब आवश्यकता पड़ गई सन्ध्या की भी।

## योग तथा सन्ध्या

युवक–परन्तु मैंने तो यह सुना है कि चित्त की चंचलता योगके बिना दूर नहीं हो सकती? योगसूत्र में भी यह आया है–

**योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः**

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अर्थात् **चित्त-वृत्तियों के निरोध को योग कहते हैं** किन्तु आप कहते हैं कि इसके लिए सन्ध्या की आवश्यकता है?

वनी—क्यों? तुम योग को कुछ और समझते हो? तनिक बताओ तो सही! तुमने योग को क्या समझ रक्खा है?

युवक—मैं तो योग को यह समझा हूँ कि जो लोग समाधि लगाते हैं वे ईश्वर का साक्षात् करते हैं। वही योगी हैं और समाधि लगाना ही योग है।

वनी—किन्तु तुम यह भी जानते हो कि **समाधि** योग का कौन-सा अंग (मंजिल) है और इससे पहले कितने अंग हैं? यदि इस समाधि को तुम्हारी एम.ए. की श्रेणी ही समझ लिया जाय, तो शेष श्रेणियाँ कौन-सी होंगी? तुम्हारे एक विद्यार्थी होने के कारण ही मैंने यह कहा है।

युवक कुछ उत्तर न दे सका तो भीमसेन बोला—महाराज! समाधि अन्तिम तथा आठवीं श्रेणी। इससे पहले ध्यान (7-बी.ए.), धारणा (6-एफ.ए.), प्रत्याहार (5-मैट्रिक), प्रणायाम (4-मिडल), आसन (3-नियम), (2) और यम (1-प्राइमरी) की श्रेणियाँ हैं।

वनी—शाबाश! अच्छा तो बेटा, अब देखो कि समाधि यदि एम.ए. है तो पहले पहल ही तो कोई मनुष्य एम.ए. में नहीं जा पहुँचेगा। सबसे प्रथम तो वह प्राइमरी में ही बैठेगा और जो प्राइमरी में पढ़ेगा, वही एम.ए. तक पहुँच सकेगा। गणित (हिसाब) में अंक (हिन्से) लिखना, पहाड़े जोड़ना, घटाना, गुणना और बाँटना यह सब प्राइमरी में ही तो सिखाए जाते हैं। फिर यही एम.ए. तक के गणित में काम आते हैं। निस्सन्देह श्रेणी ऊँची हो जाती है, परन्तु इन आरम्भिक नियमों (तरीकों) के बिना तो वहाँ भी काम नहीं चलता। अतः सन्ध्या योग में प्रविष्ट होने का केवल एक मार्ग है और उसके लिए एक प्रकार की तैयारी है।

भीमसेन (चकित होकर)—तो क्या इस सन्ध्या में यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि भी आ जाते हैं? प्राणायम तो इसमें स्पष्ट ही है।

वनी—हाँ, उदाहरण (नमूने) रूप से ये सभी अंग इसमें आ जाते हैं और उनका नियमित अभ्यास करते रहने से मनुष्य ऊँचा ही ऊँचा चढ़ता जाता है।

भीमसेन—कृपा करके इस रहस्य को तनिक खोलकर समझा दीजिये।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वनी–भला ये नियम कितने हैं, यह भी जानते हो?

भीमसेन–हाँ महाराज (1) अहिंसा, (2) सत्य, (3) अस्तेय, (4) ब्रह्मचर्य, (5) अपरिग्रह, ये पांच तो यम हैं, और (1) शौच, (2) सन्तोष, (3) तप, (4) स्वाध्याय, (5) ईश्वर प्रणिधान, ये पाँचों नियम।

वनी–अब यह बताइये कि जितने पुण्य तथा पाप हैं और होते हैं, वे किन इन्द्रियों से होते हैं?

भीमसेन–ये पुण्य-पाप पांच ज्ञान-इन्द्रियों या पांच कर्म-इन्द्रियों से होते हैं।

वनी–जितने पुण्य कर्म संसार में होते हैं, वे सब इन यम-नियमों में आ जाते हैं या नहीं?

भीमसेन–सभी आ जाते हैं, महाराज!

वनी–अब यह बताओ हिंसा किन-किन इन्द्रियों से होती हैं।

भीमसेन–हाथ, पैर, जिह्वा और मन से।

वनी–तो हिंसा से बचने के लिए हमें क्या करना चाहिये?

भीमसेन–इन इन्द्रियों अर्थात् हाथ, पैर, जिह्वा और मन से पाप न करें।

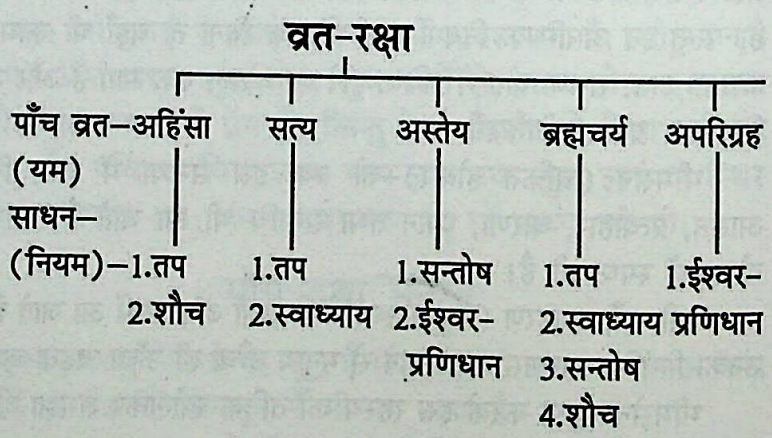
वनी–तो फिर हमें क्या करना चाहिए?

भीमसेन–यह व्रत लेना चाहिये कि पाप नहीं करेंगे।

वनी–व्रत की रक्षा कैसे होगी?

भीमसेन–तप से।

## यम के साधन और नियम




CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वनी–अब बोलो! झूठ किन इन्द्रियों से बोला जाता है?

भीमसेन–जिह्वा तथा मन से।

वनी–और सत्य किन इन्द्रियों से बोला जाता है?

भीमसेन–यह भी जिह्वा और मन से।

वनी–इसके लिए कौन-सा साधन चाहिये?

भीमसेन–महाराज! यह तो मैं जानता नहीं।

वनी–इसके साधन हैं तप तथा स्वाध्याय। अच्छा, चोरी किससे की जाती है?

भीमसेन–हाथों से, आँखों से और मन से।

वनी–कौन-सा साधन करना चाहिये, जिससे चोरी करने की आवश्यकता ही न पड़े?

भीमसेन–महाराज! चोरी सदैव लोभवश होती है। सन्तोष हो, तो मनुष्य लोभ से बचा रहता है।

वनी–ठीक! बिल्कुल ठीक! अच्छा, ब्रह्मचर्य को गिरावट किस इन्द्रिय से होती है?

इस प्रश्न के उत्तर में भीमसेन को कुछ झिझकते हुए देखकर वनी जी बोले–सब इन्द्रियों तथा मन और बुद्धि से ब्रह्मचर्य की गिरावट होती है और इसके साधन हैं–तप, स्वाध्याय, सन्तोष और शौच। शेष रह गया अपरिग्रह, इसका साधन है ईश्वर-प्रणिधान, अपितु यों समझो कि ईश्वर-प्रणिधान ही सदाचार की कुँजी है। ईश्वर में थोड़ा-सा भी विश्वास कम हुआ और गिरावट आरम्भ हुई। ईश्वर का पूर्ण विश्वासी कभी कोई पाप नहीं कर पाता और इस पूर्ण विश्वास से ही भक्त की समाधि टिक जाती है।

भीमसेन (गद्‌गद प्रसन्न होकर)–यह तो मैं समझ गया, महाराज!

वनी (मुस्कराते हुए)–जल्दी न करो बच्चा! अभी समझ कच्ची है। तनिक सब मिलकर सन्ध्या का दूसरा मन्त्र उच्चारण करो।

सब-के-सब उच्चारण करने लगे–

**ओं वाक् वाक् ओं प्राणः प्राणः ओं चक्षुः चक्षुः ओं श्रोत्रं श्रोत्रं ओं नाभिः ओं हृदयं ओं कण्ठः ओं शिरः ओं बाहुभ्यां यशोबलम् ओं करतल कर पृष्ठे।**

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वनी–देखो, इस मन्त्र में सभी पाप और पुण्य करने वाली इन्द्रियाँ आ गई हैं या नहीं?

कई सज्जन–हाँ महाराज! इस मन्त्र के अर्थ तो हम सभी जानते हैं। इसमें इन्द्रियों की पवित्रता के लिए यश और बल की भगवान् से प्रार्थना की गई है, जिससे इन इन्द्रियों में से कोई भी कभी कोई पाप न कर सके।

वही युवक–महाराज! इसमें तो यश और बल की प्रार्थना है, न कि पवित्रता और पाप न करने की?

वनी–बेटा! यहाँ भी तुम भूल कर रहे हो। इससे आगे ही जल और अंगस्पर्श का मन्त्र है। जल ही यद्यपि पवित्र करता है, शुद्ध करता है और शान्त करता है, परन्तु यथार्थ में प्रार्थना यश और बल के लिए है। अब तुम स्वयमेव बताओ कि यश कहाँ से मिलता है और बल कहाँ से?

युवक–यश तो लोग करते हैं और बल अपने अन्दर से आता है।

वनी–परन्तु लोग तुम्हारा यश कब करेंगे और तुम्हारा बल अन्दर से कैसे बढ़ेगा?

युवक–जब मैं लोगों की कुछ सेवा करूंगा, अच्छे शुभ कार्य करूँगा तो लोग स्वयमेव मेरा यश गाएँगे और बल बढ़ेगा ब्रह्मचर्य से।

वनी...परन्तु ब्रह्मचर्य निभेगा मन जीतने से।

## . मन कैसे जीता जा सकता है?

युवक (युवक सोच में पड़कर)–महाराज! मन कैसे जीता जा सकता है?

वनी–आगे सन्ध्या मे प्रणायाम का मन्त्र तो है ही। प्राणायाम किया जाता है 'आसन' लगाकर और शरीर को सम-अवस्थ में रखकर। अतः सन्ध्या का अर्थ में यह भली प्रकार समझा दिया गया है कि प्राणायाम का फल है **प्रत्याहार** अर्थात् विषयों से मन को हटाना, या मन पर विजय पाना। अघमर्षण मन्त्र पर जब प्रतिदिन दो बार विचार किया जाता है, तो धीरे-धीरे अनागत पापों की प्रवृत्ति का दमन होता जाता है। कारण, इन मन्त्रों में सृष्टि तथा प्रलय के वर्णन द्वारा सब पापों की जड़ अर्थात् अभिमान तथा अहंकार पर प्रहार किया जाता है, जिससे मन स्वयं सँभला रहता है और अन्ततः पूर्णतया वश में आकर पराजित हो जाता है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


इसके पीछे है **मनसा परिक्रमा** के छः मन्त्र। उनके द्वारा मन से जगत् पिता प्रभु की परिक्रमा करानी है। एक-एक दिशा का ध्यान करके मन्त्र पर विचार करने से, मन एकदेशीय विचार में प्रभु के चरणों में लग जाता है और यही धारणा कहलाती है।

**उपस्थान** के मन्त्रों पर ध्यान करने से प्रभु की अद्‌भुत लीला अनुभव करके मन उसके ध्यान में मग्न हो जाता है। और ध्यान की परिपक्व (पूरी पक्की) अवस्था का नाम ही समाधि है, जिसमें गायत्री मन्त्र द्वारा मनुष्य अपने-आपको प्रभु के अर्पण कर देता है। परन्तु यह सब उदाहरणरूप से आरम्भिक पाठमात्र हैं। उन्हें बढ़ाते रहने से यही अन्तिम पाठ बन जाते हैं और इनसे ही उपासना, समाधि की अन्तिम अवस्था प्राप्त हो जाती है, जहाँ फिर सिवाय ओ३म् के और कुछ जाप नहीं रहता। समाधि में मनुष्य अपने-आपको भूलकर मस्त हो जाता है और अपने-आपको प्रभु में लीन कर देता है तथा अपने को प्रभु-अर्पण करके अपने मन को भूल जाता है।

भीमसेन–सन्ध्या से मन पवित्र होता है या पवित्र मन से सन्ध्या होती है?

वनी–बेटा! प्रेमभाव से भली प्रकार प्रभु में ध्यान लगाने और शुभ कर्मों का चिन्तन करने और सबसे बढ़कर मन्त्रों के अर्थ और भाव को अपने जीवन में धारण करने से मन पवित्र होता है। नित्य इसी प्रकार सन्ध्या करने वाले मनुष्य के मन में जब किसी पाप का विचार उठता है तो उसे प्रभु का भय आ जाता है और अपने मन के उसी भाव द्वारा उसने मन्त्रों की सहायता से बार-बार परमात्मा से जो प्रार्थना की होती है, वही भाव और शब्द स्वयं उसके कानों में गूंजकर, उसे उस पाप भरे विचार से लज्जा दिलाने लगते हैं। इस प्रकार सन्ध्या से उसका मन पवित्र होता जाता है। जब मन पवित्र हो गया तो प्रभु के चरणों में भी ऐसा टिक जाता है, जैसे स्वच्छ बर्तन में निर्मल जल। बर्तन भी जल से ही स्वच्छ (साफ) होता है। ये दोनों कार्य-कारण (लाजिम-मलजूम) हैं।

यह बात सदैव याद रक्खो कि मन को सिवाय शुद्ध विचार तथा सत्य ज्ञान के और कोई भी चीज़ पवित्र नहीं कर सकती। सत्य ज्ञान की प्राप्ति सत्संग और स्वाध्याय से होती है और शुद्ध विचार भले कर्मों के चिन्तन से ही प्राप्त होते और बढ़ते हैं, अतः सत्संग में वेद का पढ़ना-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पढ़ाना और सुनना-सुनाना भी ब्रह्म-यज्ञ ही कहा गया है। इसी से मन पवित्र बनता है। जैसे कोई पूछे कि शरीर आत्मा के सहारे या आत्मा शरीर के सहारे ठहरा हुआ है, तो उत्तर यही देना पड़ेगा कि ये दोनों ही एक-दूसरे के लिए आवश्यक हैं। ऐसे ही सन्ध्या से मन पवित्र होता है और पवित्र मन से ही सन्ध्या होती है।

देवी–महाराज! मन की चंचलता का बड़ा कारण क्या है? इसका नाश कैसे किया जाय?

## राग-द्वेष

वनी–मन की चंचलता के सबसे बड़े और प्रबल कारण हैं राग और द्वेष। यही मन की पवित्रता का नाश करके उसे अपवित्र बनाते रहते हैं। इसीलिए सन्ध्या से इन्द्रियों की पवित्रता के लिए पहले और दूसरे मन्त्रों में और फिर **प्राणायाम** भी इसलिए है और **अघमर्षण** भी, जिससे पापों का क्षय हो। मनसापरिक्रमा के लगातार छः मन्त्र भी द्वेष-भवना पर विजय पान के लिए है। जब आपस का द्वेष ही मिट गया तो प्रेम अपने-आप ही पैदा होता जावेगा और मन में पवित्रता आती जावेगी।

सारांश यह समझो कि **राग र होता है वैराग्य से, द्वेष दूर होगा अभ्यास से, और वैराग्य आता है पवित्रता से।** किन्तु यह भी याद रक्खो कि वैराग्य का अर्थ घर-बार या राग का त्याग नहीं, वरन् ईश्वर तथा प्रकृति में यह ज्ञान (तमीज़) करना है कि ईश्वर प्रकृति से उत्तम है। अतः जो उत्तम है उससे ही अनुराग (प्रेम) होना चाहिये, और जो घटिया (कमतर) है, उससे वैराग्य। इस प्रकार सारा संसारी रोग दूर होकर, सबको अपने-जैसा ही समझने का भाव पैदा होगा और उसका बार-बार अभ्यास करने से द्वेष स्वयमेव दूर हो जाएगा।

## सन्ध्या का समय नियत होने की आवश्यकता

बाबू–महाराज! यह तो ज्ञात हो गया कि सन्ध्या करनी आवश्यक है और प्रेम-पूर्वक प्रभु के चरणों में ध्यान लगाना चाहिए, परन्तु क्या यह भी आवश्यक है कि ठीक सन्धि-बेला में ही सन्ध्या की जाये और

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वस्त्रादि उतार-कर पूजा के ही कपड़े पहनकर की जाय? या हम-जैसे नौकर आदमी को जो भी समय मिल जाये और जिन वस्त्रों में सुगमता हो वैसा कर ले? इसमें कोई हर्ज तो नहीं?

वनी—भाई! यह सब आडम्बर (बहाने) अपनी दुर्बलता को छुपाने और अपनी बात पर बल देने के लिए है। जिसका अन्तःकरण पवित्र हो गया और जिसे प्रभुचरण में ऐसी प्रीति है जैसी कि मछली की जल में, अर्थात् वह जल-बिना क्षणभर भी नहीं जी सकती, या जैसे कि नन्हे बालक को अपनी माता में होती है जो माता बिना एक मिनट में ही व्याकुल होकर चिल्लाने लगता है। ऐसे बच्चे सदा माता की गोद में रहते हुए उसकी छाती से लिपटे, दूधरूपी अमृतरस-पान करते ही रहते हैं, चाहे वह मल-मूत्र में लथपथ ही क्यों न हो जाय।

परन्तु इस दिखावटी आडम्बर का आशय तो केवल यह होता है कि एक दुर्बल मनुष्य उसके सहारे अपने इर्द-गिर्द के वायुमण्डल को शुद्ध और अपने अनुकूल बना ले जिसमें कोई उसपर उँगली न उठा सके। किन्तु जिसने बरसाती (मोमजामे) का कोट पहन लिया, उसे भीगने का क्या भय हो सकता? अथवा, छाता आदि सँभालना ही पड़ेगा।

सब राग अपने-अपने समय पर ही सुहाने लगते हैं और अपने साथ दूसरों पर भी अपना प्रभाव डालते हैं। हमारी जाति इस समय अवस्था-भेद (हालत) की ओर कुछ ध्यान न देकर अपनी सारी संगठन-शक्ति खोके सर्वथा नष्ट हो गई और इसकी अपनी मनमानी ने उसके मन में ईश्वर और अपने पूर्वजों की आज्ञा का विश्वास तक मिटा दिया है।

यह तो मैं कह चुका हूँ कि सन्धि-समय प्रकाश और तम का मेल होता है और **सन्धि** का अर्थ ही शान्ति तथ सुलह (Peace) के हैं। उस समय प्रभु की दिव्य शक्तियों द्वारा सारा आकाश ऐसी लहरें उत्पन्न करता है और सूर्यमण्डल भी समय-समय के भेद से ऐसी तरगें, हवाएँ, और गैसे पैदा करता रहता है, जो मनुष्य के शरीर और मन पर नाना प्रकार का प्रभाव डालती रहती हैं। देखो, कुछ ही दिन पहले शीत के कारण बाहर जाने को जी नहीं चाहता था, परन्तु बसन्त ऋतु आई तो उसने गुप्त रूप से हमारे मन पर ऐसा प्रभाव डाला कि अब कोई अन्दर बैठना नहीं चाहता।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


प्रातःकाल की बेला, जो ब्रह्ममुहूर्त्त (बड्डा बेला), प्रभात, या उषा के नाम से प्रसिद्ध है, उस समय को **प्रभात** इसीलिए कहते हैं कि **प्रभा** नाम **बुद्धि** का है। उस समय ओषजन (उजून=Ozone, प्राणप्रद वायु) चलती है, जो शरीर के रोगों को नाश करती है और बुद्धि को तेज़ करती है, अन्तःकरण के चंचलपन को दूर करके शान्त करती है। उस समय पक्षियों के पंखों की फड़फड़ाहट, जबकि वे अपने-अपने घोंसलों से निकलकर उड़ते हैं, विशेष रूप से अन्य समयों से अधिक होती है और वह गन्दी वायु को भी शुद्ध करती हैं। इस समय संसार में सत्युग-सा होता है। **ब्रह्ममुहूर्त्त** का नाम ही बड़ा महत्वपूर्ण है। उस **ब्रह्ममूहुर्त** में योगीजन अपनी-अपनी कन्दराओं में और नदियों के तटों पर समाधिस्थ होते हैं। प्रभु के तेजस्वी आशीर्वाद की धारा उन्हीं के लिए बरसती है। वह भी अपनी विचारधाराएँ (Current of thoughts) संसार के सुख और शान्ति के लिए भेजते रहते हैं, और वही परमाणु उस समय भक्ति करने वालों को भी प्राप्त होते हैं। अतः उपासना सन्ध्या-समय पर करनी ही बड़ी लाभदायक है।

अब रही वस्त्रों की बात। वस्त्रों का भी भारी प्रभाव पड़ता है। तनिक यह तो बतलाइये कि आप मेरे पास अपनी दफ्तरी वस्त्रों में आए हैं या भक्तों के भेष में? और इसका कारण क्या है?

बाबू-भक्तों के भेष में, महाराज! उन वस्त्रों में आपके पास आते हुए लज्जा भी आती थी और यह भी विचार हुआ कि साहब बनकर जाना ठीक नहीं। बूट के साथ जुराब भी आवश्यक है, बूट हाथ से उतारना पड़ेगा, फिर हाथ धोने जाना होगा, जुराबें मिट्टी में खराब हो जायेंगी। पतलून से बैठने में पूरा-पूरा आराम भी नहीं मिलेगा। यदि महाराज ने कोई आसन बतलाना चाहा और कोई शिक्षा देनी चाही तो वह क्रिया भी पूरी-पूरी न हो सकेगी।

वनी-बस फिर मेरा उत्तर तो आपने स्वयं ही दे दिया। वस्त्रों में मनुष्य के शारीरिक रोगों के परमाणु भी घुस जाते हैं और मानसिक सुविचारों और कुविचारों के भी। फिर एक गृहस्थी और व्यावहारिक मनुष्य के वस्त्र पूरे-पूरे सात्विक विचारों के रह ही नहीं सकते। अतः सात्विक कार्य के लिए सात्विक वस्त्र की ही आवश्यकता है। इसके सिवा और कोई विशेष बात

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


नहीं। शेष यह कि आप नौकर हैं। आपको पराधीनता है। है तो यह सत्य, किन्तु केवल हिन्दुओं के लिए ही, मुसलमानों के लिए नहीं; वे तो अपने धर्म के पक्के हैं। अस्तु, परमात्मदेव उनकी यह शक्ति तो उनमें स्थिर रक्खे और हमें भी अपने धर्म पर ऐसा ही दृढ़ विश्वास रखने का बल दें।

इस पराधीनता का उपाय यह है कि ठीक उस समय, जब आपको कपड़े उतारने और हाथ-मुंह धोने का भी अवकाश न मिल सके, तो अपने हृदय की शुद्ध भावना से पूर्ण प्रेम तथा श्रद्धा के साथ गायत्री मन्त्र को पूरे मन से उच्चारते और उस पर अर्थ विचार करते हुए अपने सिर को झुका दो। यदि अर्थ-विचार का अवकाश न भी हो, तो फिर भी ऐसी क्षणिक भक्ति, यदि सच्ची प्रीति और हार्दिक श्रद्धा से की जायेगी तो भी बड़ा लाभ देगी। फिर जब नौकरी से छूटो तो सबसे पहले यही काम करो। इस प्रकार वह प्रायश्चित रूप में हो जायेगा। अभिप्राय तो बेटा अपनी भलाई से है, किसी दूसरे पर आभार या उस पर उपकार तो नहीं। जितना भी पवित्र भाव से इसे कर सकोगे, उतनी ही शीघ्र उन्नति कर सकोगे।

## सन्ध्या की आरम्भिक क्रियाएं आवश्यक हैं।

भजन-भोजन पर भी बहुत कुछ निर्भर है, अतः भोजन को भी ठीक भजन के ही समान समझना चाहिए।

अभी महाराज भोजन के सम्बन्ध में कह ही रहे थे कि एक युवक बड़े उतावलेपन (जल्दबाजी) से बीच में बोल उठा—महाराज! संन्ध्या में जो क्रियाएं की जाती हैं, जैसे चोटी में गांठ लगाना, आचमन करना, अंगस्पर्श, मार्जन, आसनादि, ये सभी आवश्यक हैं अथवा अपनी इच्छा पर निर्भर हैं? क्या इनका भी कुछ आध्यात्मिक अथवा शारीरिक लाभ है, या यह केवल चिह्नमात्र (मज़हबी निशान) ही हैं।

वनी—पुत्र! आर्य जाति के पूर्वज बड़े ही आत्म-ज्ञानी और तत्त्ववेत्ता दार्शनिक (फिलॉसफर) थे। उन्होंने योग विद्या के बल से साधारण से साधारण भी जो साधन मनुष्य जीवन के लिए उपयोगी देखे, उन्हें ही धर्म अथवा पुण्य का नाम दे दिया और जिसे भी जीवन में अवनति (गिरावट) का कारण समझा, उसे ही पाप ठहरा दिया। पाप का अर्थ है गिराने

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वाला, पतित करने वाला, अर्थात् जिससे किसी प्रकार की भी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक अथवा आर्थिक हानि हो, वही पाप है। इसी प्रकार **धर्म** का अर्थ है **रक्षा करना**। जिस कर्म से शारीरिक, मानसिक या सामाजिक उन्नति हो, वही धर्म है।

अन्तर्दृष्टि की शक्ति प्राप्त करना ही सन्ध्या-साधक का पहला कर्त्तव्य है, अर्थात् मन की समस्त शक्तियां एकत्रित करके उसके अन्दर यह देखना कि क्या हो रहा है, और क्या नहीं हो रहा? इसी परोक्ष (गुप्त) अवस्था को उसे अपनाना पड़ता है। इन क्रियाओं का दार्शनिक तत्व (फिलॉसफी) वर्णन करने से पहले मैं आप लोगों को यह एक घरेलू उदाहरण से भी समझा दूं तो शायद अपके दिल को लग जाये। देखो! मनुष्य के शरीर के लिए भोजन और आत्मा के लिए भजन शान्ति देने वाले हैं, अतः ये दोनों ही हमारे लिए परमावश्यक हैं। जैसे 1. मनुष्य का भोजन रसोईघर में बनता है और वहां ही खाकर मनुष्य उसका रस लेता है, परन्तु भोजन बनाने से पहले माताएं नित्यप्रति रसोई में झाड़ू लगाती हैं और फिर लीपा-पोती करके भूमितल शुद्ध करती हैं; 2. जिन बर्तनों में भोजन बनाना होता है, उन्हें मांजती और शुद्ध करती हैं। 3. फिर उन बर्तनों को भी शुद्ध करती हैं जिनमें परोसकर भोजन खिलाना होता है; यह शुद्धि हो जाने पर 4. वे आटा गूंधती हैं और उसे बार-बार रलाती हैं, जिससे वह आटा एकतार हो जाये; 5. फिर उसे तवे पर पकाती और सेंकती हैं, तब कहीं वह खाया जाता है और आनन्ददायक होता है तथा बल देता है।

सारांश यह कि ये जितनी भी क्रियाएं भोजन का आनन्द लेने के लिए की जाती हैं, वे सब रसोईघर में ही होती हैं। इसी प्रकार आत्मा को भी भजन का आनन्द लेने के लिए इतनी ही क्रियाएं करनी चाहिए और नित्यप्रति करनी चाहिए।

देखो, हमारा यह शरीर एक भोजनशाला है, अर्थात् यह आत्मिक भोजन की तैयारी के लिए रसोईघर है। 1. शौच, दातुन, स्नान आदि ही इसका झाड़ू तथा लेपन आदि हैं। 2. अंग-स्पर्श और मार्जन-क्रियाएं, उन सब बर्तनों की सफाई के समान हैं, जिनमें भजनरूपी आत्मिक भोजन तैयार होता है। 3. यह मन ही वह बर्तन है, जिसमें आटा गूंधना है। वह

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


आटा क्या है?–संन्ध्यारूपी मन्त्रों का पाठ जिसे श्रद्धा के जल से विधिपूर्वक गूंधना चाहिए। कहीं उतावलेपन (जल्दबाजी) से जल अधिक न पड़ जाये, कि आटा पतला हो जाये, या असावधानी से जल कम न हो कि वह सूखा ही रह जाये। अत: यह श्रद्धा (जल) भी ज्ञानपूर्वक हो। फिर बार-बार के अभ्यास से इस मन्त्ररूपी आटे को प्रीतिपूर्वक एकतार किया जाता है। 4. चित्त ही वह बर्तन या देगची है जिसमें सब्जी बनाई जाती है। इससे मनुष्य को भोजनरूप भोजन का आनन्द और स्वाद आता है। 5. बुद्धि वह तवा है, जिस पर रोटी पकाई जाती है। मन के लिए तो श्रद्धा-जल की आवश्यकता है, चित्त और बुद्धि के लिए अग्नि की आवश्यकता है, अर्थात् तप तथा ज्ञान रूपी अग्नि की तपरूप अग्नि और बुद्धि के लिए ज्ञानरूप अग्नि की–तभी यह मन्त्ररूपी रोटी पककर सिद्ध होती है। 6. अहंकार वह बर्तन अर्थात् थाली है, जिसमें परोसकर यह आत्मिक भोजन खाया जाता है। अत: यह अहंकार शुद्ध ही होना चाहिए। अहंकार का शुद्धिदान (त्याग) से होता है। जैसे नित्यकर्म में भोजन खाने से पहले **अग्नेय स्वाहा अग्निषोमाभ्यां स्वाहा** आदि से आहुति दी जाती है और इस शुद्धि से ममता का त्याग होता है, इसी प्रकार भजन में भी इस अहंभाव की आहुति दी जानी चाहिए, जिससे भोजन के समान यह भजन भी प्रभु के निमित्त हो जाये, इसलिए सन्ध्यारूपी भजन के अन्त में यह कहना चाहिए कि 'हे प्रभो! यह तेरे निमित्त है। तेरे अर्पण है।' तभी उस भजन से पूरा-पूरा रस और आनन्द मिलेगा।

## शिखा-बन्धन

अब सबसे पहले चोटी के सम्बन्ध में सुनिये। 1. **शिखा** साधारणत: **चोटी** के नाम से ही प्रसिद्ध है। हमारे शरीर में चोटी वह स्थान है, जिससे ऊपर तथा ऊंचे और कोई स्थान नहीं है। सबसे ऊंचा स्थान यही है। जहां चोटी रक्खी जाती है, उस स्थान को ही वैदिक परिभाषा में **ब्रह्मरन्ध्र** कहते हैं और यही दशम द्वार भी है, जो गुप्त कहा गया है देखो! मनुष्य के शरीर में नौ छिद्र तो प्रकट हैं–आंखें 2, कान 2, नासिका 2, मुख 1, गुदा 1, मूत्रेन्द्रिय 1, इन्हीं नौ द्वारों से मनुष्य का अन्दर का और बाहर का

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


समस्त कार्य-व्यवहार चलता है। एक भी द्वार विकारी हो जाये तो बड़ा दु:ख होता है। इन्हीं द्वारों से सब साधारण मनुष्यों का जीवात्मा निकलता है। किन्तु जिसे ब्रह्म का साक्षात् हो गया उसका जीवात्मा और प्राण इस दसवें गुप्त द्वार से ही निकलता है। यह निशान है ब्रह्म की प्राप्ति और आवागमन से छूटने अर्थात् मुक्त होने का। मनुष्य के संसार में जन्म लेने का वास्तविक तथा चोटी का (सर्वोत्तम) आशय भी यही है।

2. प्राणों का केन्द्रीय स्थान सिर में यही है। यहां से ही प्राण जाग्रत् अवस्था में सांसारिक व्यवहार के लिए नीचे की ओर सारी शरीर में बहते हैं और रात्रि को हमें विश्राम देने और फिर ताज़ा बल पाने के लिए वापिस लौटकर यहां इकट्ठे हो जाते हैं।

3. शरीर में आठ चक्र हैं और यह **सहस्त्रदल** या **शून्य चक्र** चोटी के स्थान पर चक्र कहलाता है। समाधि-अवस्था में योगी अपने प्राणों को इसी स्थान पर ले आता है और इस चक्र का भेदन करके परमात्मा का साक्षात्कार भी वह इसी स्थान पर करता है।

4. सुषुम्णा नाड़ी और मेरुदंड का इस चोटी से घनिष्ठ सम्बन्ध है। कारण, चित्त की वृत्तियों का निरोध तभी होता है, जब जीवात्मा सुषुम्णा नाड़ी में आ जाता है। तभी मन और इन्द्रियां अपने सारे विषय से अलग हो जाती हैं और जीवात्मा परमात्मा में ऐसा मग्न हो जाता है जैसे डोबा (डुबकी-मार) समुद्र में डुबकी लगाकर। हरेक मनुष्य रात को प्रतिदिन जब गहरी नींद लेता है, तब उसे किसी दु:ख-सुख या अमीरी-गरीबी का कोई कष्ट और कोई भय तक नहीं होता। यह वह अवस्था है जो प्रत्येक मनुष्य को उसके अनजाने ही जीवन-आनन्द प्राप्त करने के लिए स्वभावत: प्रभु की ओर से प्राप्त होती है और योगी तो जब चाहे अपनी इच्छा से घण्टों, महीनों, अपितु वर्षों तक के लिए इस बात को निरन्तर भोग सकता है।

सिर में शून्य चक्र का स्थान इतना बड़ा होता है, जितना गाय का खुर (पैर), इसीलिए हिन्दुओं की चोटी भी उतनी जगह पर रक्खी जाती है।

इस चोटी को बांधते हुए बालों को दाएं-बाएं हाथों से खींचने पर उन हाथों का प्रकाश और तम (Positive and Negative currents) चोटी द्वारा नीचे शरीर में चले जाते हैं। इससे मेरुदंड के मनके ऐसे ही सीधे हो जाते

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हैं, जैसे सितार के तारों को एक स्वर में करने के लिए खूंटी मरोड़कर तारों को ऊपर खेंचना और कसना पड़ता है। इस प्रकार चोटी के खींचने से मन की तीन तारें सत, रज, तम खिंचकर सम हो जाती हैं। जब साधक अपना मेरुदंड सीधा करके आसन लगाकर बैठता है, तो सचमुच वह सम-अवस्थित हो जाता है और प्रभु-भजन में उसके मन में चंचलता आने का गुमान तक भी नहीं रहता। यही है इसका आध्यात्मिक लाभ।

मेरुदंड के इस प्रकार ठीक करने से आयु तन्तु पक्के हो जाते हैं। इससे आयु बढ़ती है। सांस कम खर्च होते हैं। विचारशक्ति तथा स्मृति तेज होती है। यह हुआ मानसिक तथा मस्तिष्क संबंधी लाभ। ब्रह्मचर्य की भी रक्षा होती है। जिस मनुष्य की विचारशक्ति तेज हो वह समाज के लिए उपयोगी और धन पैदा करने के लिए पुरुषार्थी हो सकता है। इसीलिए चोटी रखना हिन्दू जाति का एक चिह्न-धार्मिक चिह्न बन गया है।

## सन्ध्या 'यज्ञ' है

अब रहा गांठ लगाने का प्रश्न! इसके दो अभिप्राय हैं 1. जेसे बिखरे हुए बालों को गांठ लगा दी जाती है, वैसे ही साधक यह भावना करता है कि उसके चित्त में बिखरी हुई वृत्तियां एकत्रित होकर ध्यान की गांठ में आ जाएं। 2. परमात्मा का ध्यान (सन्ध्या) एक ब्रह्म यज्ञ है। प्रत्येक यज्ञ में यजमान पत्नी के साथ बैठता है। इस ब्रह्म यज्ञ में बुद्धि को, जो आत्मा की पत्नी मानी जाती है, इस गांठ के द्वारा आत्मा से जोड़ दिया जाता है।

विवाह में जब स्त्री और पुरुष का जोड़ा बनाया जाता है, तो एक का पल्ला दूसरे के पल्ले से बांध दिया जाता है, इसे गठजोड़ा या गठबंधन कहते हैं। ऐसे ही साधक उस समय बड़े शुद्ध भाव से और सचेत होकर अपनी बुद्धि को आत्मा से चोटी की गांठ द्वारा बांध देता है, जिससे दोनों प्रभु के दरबार में, प्रभु के सम्मुख अपने शुद्ध हृदय की आहुति दे सकें।

यज्ञों में यजमान और उसकी पत्नी अपने लक्ष्य की ओर ध्यान रखने के सिवा और कोई बातचीत या काम नहीं कर सकते। ऐसे ही सन्ध्या-साधक की आत्मा और बुद्धि सिवाय प्रभु-चिन्तन के और कोई भी विचार मन में नहीं लाते। यही वास्तविक अभिप्राय चोटी को गांठ लगाने का है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## शिखा बन्धन तथा गायत्री मन्त्र

किन्तु गायत्री मन्त्र से ही यह गांठ क्यों?–वह इसलिए कि वेदों में 1. गायत्री का स्थान चोटी का है। यही ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति का एक मात्र साधन है। मनु महाराज ने कहा है–

**'सावित्र्यां परं नास्ति'**

अर्थात् 'सावित्री से बढ़कर कोई श्रेष्ठ मन्त्र नहीं। 2. गायत्री का अर्थ है–प्राण और ज्ञान। चोटी का स्थान ही प्राण तथा ज्ञान का केन्द्र है। 3. मनुष्य में यदि कोई चोटी की चीज़ अन्य प्राणियों से विशेष है, तो वह उसकी बुद्धि है। अत: गायत्री मन्त्र से ही, जो सद्बुद्धि देने वाला मन्त्र है, चोटी को गांठ दी जाती हैं 4. यह भी आपको स्मरण रहे कि ब्रह्मयज्ञ में वेद का पढ़ना-पढ़ाना भी एक अंग है और वेद को पढ़ने से पहले उसका आरम्भ गायत्री मन्त्र से होता है। इसीलिए इसका नाम है वेदमुख। कारण यह है कि सन्ध्या ब्रह्मयज्ञ है; इसमें वेदों के मन्त्रों का उच्चारण ही होता है, इसलिए भी मुख्यतया गायत्री ही इसमें पढ़ी जाती है। 5. गायत्री का ध्येय है–आत्मसमर्पण। अत: आरम्भ में ही बुद्धि और आत्मा का जोड़ लगाकर और सन्ध्या में प्रभु-अर्पण होने का भाव पूर्ण कर दिया जाता है। 6. जब भी मनुष्य को अंधेरे में कहीं आना-जाना पड़े, तो सबसे पहले यह आवश्यक होता है कि वह प्रकाश को अपने आगे करे। सन्ध्या-समय मनुष्य अपने अन्धकारमय अन्त:करण में प्रविष्ट होना चाहता है, इसीलिए वह गायत्री को, जो प्रकाश का मन्त्र है, बोलकर उसके प्रकाश की सहायता से अपनी आन्तरिक यात्रा आरम्भ करता है। यह दार्शनिक ज्ञानतत्व (फिलॉसफी) तो है हमारे चोटी के ब्रह्मज्ञानी आर्य्य पूर्वजों का, अब तनिक पाश्चात्य तत्ववेत्ता (फिलॉसफरों) की भी सम्मति सुनिये–

## चोटी की महत्ता एक तत्ववेत्ता की दृष्टि में

1. 'गॉर्डन' मैगजीन नं. 258, सन् 1899 ई. के पृष्ठ 12 पर डॉक्टर ह्यूमन लिखते हैं–'मैंने कई वर्ष भारत में रहकर आर्य संस्कृति का स्वाध्याय किया है। आर्य लोग चिरकाल से चोटी रखते हैं, जिसका उल्लेख वेदों में भी पाया जाता है। दक्षिणात्य (दक्षिण के लोग) तो आधे

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सिर पर चोटी ही रखते हैं। मैं उनकी विलक्षण बुद्धि से बड़ा प्रभावित हुआ। यह चोटी बुद्धि के विकास में अवश्य कुछ न कुछ सहायता देती है। वैसे भी चोटी या सिर पर अधिक बाल रखना लाभदायक है। यूरोप का कोई भी देश ऐसा नहीं, जो सिर पर बड़े-बड़े बाल न रखता हो। मेरा हिन्दू धर्म में अगाध विश्वास है।' –आर्यवीर, लाहौर, 31.1.30 से उद्धृत

2. पाश्चात्य चिकित्सा के विशेषज्ञ सर चार्ल्स पारल्युकस ने लिखा है– 'चोटी का शरीर के उस आवश्यक अंग से बड़ा गहरा संबंध है, जिससे ज्ञान की शुद्धि और शरीर के समस्त अंगों का संचालन होता है। जब से मैं चोटी की वैज्ञानिक महत्ता को समझा हूँ, मैं आप भी चोटी रखता हूँ। –सरस्वती, प्रयाग सन् 1914 ई., नं. 7 से उद्धृत

3. अर्ल थामसन, 'एलार्म' मैगज़ीन, सन् 1921 ई., नं 1, पृष्ठ 196 पर लिखते हैं–'मैं जब चीन में भ्रमण करने गया, तब मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि चीनी भी भारतवासियों के समान, आधे से अधिक सिर पर बड़े-बड़े बाल रखते हैं। मैंने जब से इस विज्ञान की खोज की है, तब से मुझे यह विश्वास हो गया है कि आर्य लोगों का प्रत्येक नियम तथा कार्य विज्ञान से ओतप्रोत है। चोटी रखना आर्य लोगों का धर्म ही नहीं, वरन् सुषुम्णा के केन्द्रों की रक्षा के लिए ऋषि-मुनियों की खोज का एक विलक्षण चमत्कार है।

फिलैडैलफिया (अमरीका) का एक प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. आई.ई. क्लार्क, एम.ए.एम.डी. का विचार है कि 'सुषुम्णा की रक्षा आर्य लोग चोटी रखकर करते हैं और यूरोप के लोग सारे सिर पर बाल रखकर। मैं इन दोनों उपायों में से विज्ञान की दृष्टि से चोटी रखने को अधिक उपयोगी समझता हूं। कारण, यह ठीक उसी स्थान की रक्षा करती है, जिसकी मनुष्य-जीवन के लिए सबसे अधिक आवश्यकता है।'

भीमसेन–तो क्या वेदों में भी शिखा रखने और सिर पर बाल रखने का आदेश आता है?

वनी–बेटा! सारा विज्ञान वेद से ही तो प्राप्त होता है। देखो, रंग सूर्य से पैदा होता है। मनुष्य-शरीर के केश (बाल) अपना रंग चार बार बदलते हैं। बाल्यकाल में जब (पदार्थ) ग्रहण करने की शक्ति नहीं होती, तब

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


बालक के बालों का रंग पीत-लाल (पीलापन लिये लाल-सा, सुनहरा) होता है और जब वृद्धावस्था में ज्ञान ग्रहण करने की शक्ति नहीं रहती, तब श्वेत हो जाते हैं। किन्तु युवावस्था में जब ज्ञान ग्रहण करने की शक्ति पूर्ण रूप से विद्यमान होती है, तब बालों का रंग काला होता है। कारण, काले रंग में सूर्य की किरणों का प्रभाव विशेष पड़ता है।

किसी भी मनुष्य को बाल (दाढ़ी, मूंछ और सिर के बाल) नहीं कटवाने चाहिए, सिवाय बाल, वृद्ध और असमर्थ रोगी के। कारण, बालों में विद्युत् ग्रहण करने की शक्ति है। इस शक्ति के सहारे केशों द्वारा द्यौतत्त्व मनुष्य के मस्तिष्क के ज्ञानतत्वों में बल पहुंचाता है। अथर्ववेद में लिखा है–

**'बृहस्पतिः प्रथमः सूर्याय शीर्षे केशामकल्पयत्'**

अर्थात् 'ज्ञानाधिष्ठान बृहस्पति–आकाश–ने पहले ही सूर्य के द्वारा सिर में केशों को उत्पन्न किया।' सार यह है कि ज्ञान और सूर्य का केशों के साथ अपूर्व संबंध है।

यजुर्वेद अध्याय 19, मंत्र 92 से भी यही आज्ञा मिलती है कि योगी लोग दाढ़ी, मूंछ और शिखा रखें–

**ओम् आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम।**
**केशा न शीर्षन्यशसे श्रियै शिखा सिंहस्य लोम त्विषिरिन्द्रयाणि॥**

अर्थात् 'सिंह के बालों के समान शिखा रखते हैं...।'

युवक–तब तो हमें भी चोटी रखनी चाहिए। आजकल के हम नवयुवक सिर के बालों को तो खूब संवारकर रखते हैं, किन्तु जिसकी परम आवश्यकता है, उसकी परवाह नहीं। न हमें यथार्थ तत्व का ज्ञान ही है और न इसकी शिक्षा ही है।

वनी–यह तो भाई, अब आपकी इच्छा है। जचे तो तुरन्त ही प्रयोग (अमल) करो। यही बुद्धिमानों का लक्षण है।

युवक–महाराज! अब आप कृपा करके आचमन का भी रहस्य समझाइये। गले की कफ-निवृत्ति तो हम जानते ही हैं, यह लाभ तो लिखा भी है, किन्तु शेष रहस्य भी चोटी के रहस्य में समान समझा देने की कृपा कीजिए।

वनी–पुत्र! इस प्रश्न का उत्तर सायंकाल दिया जायेगा। अब पर्याप्त समय हो चुका है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

# तीसरी सीढ़ी

# सन्ध्या उद्देश्य

## आचमन मन्त्र

**ओं शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभि स्त्रवन्तु नः।**

(यजु. 36-12, साम. उत्तरार्चिक. 1-16, ऋ. 10-9-4, अथर्व. 1-6-1)

वनी—सब मनुष्य किस बात के इच्छुक हैं?

युवक—सुख तथा शान्ति के।

वनी—सन्ध्या के इस प्रथम मन्त्र में, जिससे तीन बार आचमन किया जाता है, **अभिष्ट** शब्द पड़ा हुआ है। **अभिष्ट** कहते हैं 'सुख की प्रबल इच्छा' को, परन्तु आपने कहा **सुख तथा शान्ति**। इस मन्त्र में पहले **शं नो देवी** और अन्त में, **शंयोरभिस्त्रवन्तु नः** आपके मांगे हुए पदार्थ जो मन का अभीष्ट हैं वही मांगा गया है। यह वही दे सकता है जो स्वयं सुख तथा शान्ति का भण्डार हो।

## दो प्रकार की सुख तथा शान्ति

सुख तथा शान्ति दो प्रकार की होती है : विषम औरा सम। जो सुख किसी के त्याग से मिलता है उसे **शान्ति** कहते हैं। जैसे ज्वर आकर चला गया तो शान्ति है, परन्तु ग्रहण से जो सुख मिलता है उसका नाम है **परम शान्ति** अथवा **आनन्द**। सुख को **मयः** भी कहते हैं। **शम्** और **मयः** सांसारिक दुःखों के शमन अर्थात् शान्ति होने से जो सुख-अनुभूति आत्मा में प्रकट होती है, उसे **शम्** कहते हैं। दूसरी मयः'—आत्मा में सांसारिक विषयों के अतिरिक्त, अर्थात् मनन तथा निदिध्यासन द्वारा जो स्थिर शान्ति-सी प्रतीत होती है, अर्थात् जो आनन्दमय उल्लास-सा प्रतीत होता है, उसे **मयः** कहते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri and Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


युवक–महाराज! मैं तो जल के आचमन के संबंध में पूछ रहा हूँ। मन्त्र शान्ति और सुख की इच्छा बतलाता है।

वनी–बच्चा! तुमने उतावलापन किया। अस्तु तुम स्वयं ही बतलाओ, शरीर में अशान्ति कब होती है और मन में कब?

युवक–शरीर में जब कोई विकार हो, रोग हो, तब अशान्ति, और मन में जब कोई विकार या खोट हो, तब भी।

वनी–शरीर के रोग औषधि द्वारा दूर होने से शरीर में शान्ति आएगी। जल समस्त रोगों की औषध है।

## जल से रोग-निवृत्ति

वेद में आता है **अप्सु विश्वानि भेषजः** अर्थात् 'जल समस्त रोगों का औषध है।' मन से जब खोट दूर होगा, अर्थात् मन में जब पवित्रता आएगी, तभी मन शान्त हो जायेगा।

## जल का गुण, कर्म, स्वभाव धारण करो

जल में पवित्र करने का गुण है, परन्तु स्थूल शरीर को। इसी का सूक्ष्म भाग–गुण, कर्म, स्वभाव–मन को शान्त करता है। नम्रता इसका स्वभाव है, परोपकार इसका कर्म और रस इसका गुण। इसके गुण को इस प्रकार चित्त में स्मरण करने से कि जल सर्व संसार के प्राण की रक्षा करता है, सबका जीवन-आधार है, उसके गुण को धारण किया जाता है; ऐसे ही कर्म करने से अन्तःकरण पवित्र होता है।

## जल से मेधा प्राप्त

जल से मेधावृद्धि भी बनती है। इसीलिए ऋषि याज्ञवल्क्य ने कहा है–

**तेनहि पूतिरन्तरतः मेध्या हवै, आपः मेध्यो भूत्वा व्रतमुपयानि।**

(शतपथ ब्रा. 1-1-1-1)

अर्थात् 'जल मेधा के लिए हितकर है। जल शान्त तथा पवित्र है। इसलिए मेधा प्राप्त होने पर मनुष्य में नम्रता–परोपकार का भाव आता है और खोट दूर हो जाता है।

## जल का चन्द्रमा तथा मन से संबंध

जल का चन्द्रमा से संबंध है और चन्द्रमा का मन से। वेद भगवान् कहते हैं–**चन्द्रमा मनसो जातः** (यजु. 31-12)

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


इसलिए संस्कारों के संबंध में शास्त्रकार कहते हैं कि 1. **सीमन्तोन्नयन संस्कार** चौथे, पांचवें, या छठे मास में करना चाहिए, जब शुक्लपक्ष चन्द्रमा पुरुषवाची नक्षत्र में हो। कारण, चौथे मास में बालक की मानसिक शक्ति का विकास आरम्भ होता है, पांचवें वर्ष में बढ़ता है और छठे में बुद्धि का प्रकाश होता है। मन के साथ प्रकाश, चन्द्रमा की ज्योति का विशेष संबंध है तथा स्मृति-वृद्धि का भी।

2. ऐसे ही **निष्क्रमण संस्कार** भी शुक्लपक्ष में और चूड़ाकर्म तथा **यज्ञोपवीत** भी शुक्लपक्ष में ही होते हैं। इन संस्कारों का प्रयोजन मन तथा मस्तिष्क की शक्ति बढ़ाने का ही है। जल का चन्द्रमा के साथ विशेष संबंध होने से मन तथा बुद्धि पर भी जल का विशेष प्रभाव पड़ता है।

आयुर्वेदवाले कहते हैं कि गर्भवती स्त्री चन्द्रमा को देखा करे। पूर्णमासी की रात को खूब आह्लाद करे, जिससे बच्चे के मन पर उस शीतलता का विशेष प्रभाव पड़े।

चन्द्रमा रस को पैदा करता है। घी में जल का अंश अधिक होता है अतः यह रसदार है। घी से धी (बुद्धि) बनती है।

## दिव्य जल

कहावत है–'जैसा घी वैसी धी, जैसा पानी वैसी वाणी।' यज्ञों द्वारा जिस जल की वर्षा होती है, उसमें दिव्य गुण होते हैं। उससे जो अन्न पैदा होता है, वह भी दिव्य गुण वाला होता है; जो मनुष्य उस अन्न को खाते हैं, उनके अन्तःकरण में भी दिव्य गुण उत्पन्न होते हैं, जैसा कि यजुर्वेद 1-19, 20 में आता है–

**ओं शर्मास्यवधूतꣳरक्षोऽवधूताऽअरातयोऽदित्यास्तगासि प्रति त्वादितिर्वेत्तु। धिषणासि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु दिवस्कम्भनीरसि धिषणासि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वतो वेत्तु॥** (यजु. 1-19)

**भावार्थ**–'मनुष्यों को अपने विज्ञान से अच्छी प्रकार पदार्थों को इकट्ठा करके उनसे यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए जो कि वृष्टि व बुद्धि का बढ़ाने वाला है; वह अग्नि और मन से सिद्ध किया हुआ सूर्य के प्रकाश को त्वचा के समान सेवन कराता है।'

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


**ओं धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वेदानाय त्वा व्यानाय त्वा। दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धान्देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोऽसि॥** (यजु. 1-20)

**भावार्थ**–'जो यज्ञ से शुद्ध किए हुए अन्न, जल और पवन आदि पदार्थ हैं, वे सबकी शुद्धि, बल-पराक्रम और आयु के बढ़ाने के लिए समर्थ होते हैं, इससे सब मनुष्यों को यज्ञ कर्म का अनुष्ठान नित्य करना चाहिए तथा परमेश्वर की प्रकाशित की हुई जो वेद-चतुष्टयी अर्थात् चारों वेदों की वाणी है, उसके प्रत्यक्ष करने के लिए ईश्वर के अनुग्रह की इच्छा तथा अपना पुरुषार्थ करना चाहिए, और जिस प्रकार परोपकारी मनुष्यों पर ईश्वर कृपा करता है वैसे ही इन लोगों को भी सब प्राणियों पर नित्य कृपा करनी चाहिए, अथवा जैसे अन्तर्यामी ईश्वर वा सूर्य लोक, संसार, आत्मा और वेदों में सत्यज्ञान तथा मूर्तिमान पदार्थों का निरन्तर प्रकाश करता है, वैसे ही हम सब लोगों को परस्पर सबके सुख के लिए सम्पूर्ण विद्या मनुष्यों को दृष्टिगोचर कराके नित्य प्रकाशित करनी चाहिए और उनसे हमको पृथ्वी का चक्रवर्ती राज्य आदि अनेक उत्तम-उत्तम सुखों को निरन्तर उत्पन्न करना चाहिए।'

अब प्रश्न हो सकता है कि सारे जलों में यह गुण समान रूप से नहीं हो सकता। कारण, कुएं के जल में, नदी के जल में, स्रोत (चश्मे) के जल में, और वर्षा के जल में भेद है। कहीं का जल ज्वर पैदा करता है, कहीं का जल विबन्ध (कब्ज) करने वाला और कहीं का दस्त लाने वाला। लोग गंगाजल को दिव्य जल कहते हैं और वास्तव में वह है भी दिव्य जल। कारण, उसमें नाना प्रकार की बूटियों और धातों (धातुओं) से रगड़ा हुआ जल आता है। महात्मा गांधी जी ने जब अन्न न खाने का व्रत किया था तो उनके लिए किसी विशेष स्रोत का जल लाया जाता था, जिससे जीवन-तन्तु सुरक्षित रहते थे। वर्षा का जल भी इसीलिए दिव्य माना जाता है और इसीलिए शास्त्रकारों ने यज्ञपात्र विधान करके सोने, चांदी, तांबे आदि को विशेषता दी है।

## धातों का प्रभाव जल पर और कुशा

यदि आचमन-पात्र इन धातों में से किसी धातु का हो, उसमें कुशा (घास) डाल दी जाये तो वह जल अमृत बन जाता है। कुशा में अनेक गुण हैं। वह कई

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


शारीरिक रोगों को दूर करती है और मानसिक संबंध में अपने अन्दर विद्युत्-विशेष का गुण रखती है। इसीलिए हिन्दू लोग ग्रहण के समय, दैनिक आवश्यकता के उन पदार्थों में जो फेंके नहीं जा सकते, कुशा डाल देते हैं, जिससे ग्रहण-काल में पैदा होने वाली विषाक्त गैसें उन पर प्रभाव नहीं डाल सकतीं। यह कुशा मलेरिया (मौसमी ज्वर), अतिसार तथा पेट के अनेक रोगों का औषध है। इसमें वीर्य तत्व भी अधिक है। जिस वट वृक्ष के नीचे कुशा उगी हो और उसे गाय चरती हो, उस वृक्ष के ईशान कोण की लड़ी (शाखा) से कोंपल लेकर, दही, माष और गोरी सरसों के दानों में मिलाकर स्त्री को खिलाई जाये जिसको कन्याएं ही होती हों और पुत्र न होता हो, उसके अवश्य पुत्र उत्पन्न होता है। यह आयुर्वेद का कथन है। जैसे बड़ और पीपल की जड़ें दूर तक चली जाती हैं, वैसे ही कुशा की जड़ें भी बहुत दूर तक चली जाती हैं और उस वृक्ष की जड़ों से मिल जाती हैं। इससे ही बड़ की कोंपल में यह प्रभाव पैदा हो जाता है। कूप खोदने वालों का कथन है कि हमने कुशा की जड़ को पचास फीट नीचे तक देखा है। जिस वृक्ष की जड़ें बहुत गहरी जायें उसके फल, या जिस कुएं में जल बहुत गहराई से निकले उसका जल तथा उस स्थान के मनुष्यों का बल बहुत होता है और वे लम्बे भी अधिक होते हैं।

## आपः के अर्थ

मन्त्र में **आपः** शब्द का अर्थ जल भी किया गया है और परमात्मा **सर्व-व्यापक** भी। साधक को जल हाथ में लेकर इसको पवित्र भावना की दृष्टि से देखना चाहिए कि ईश्वर का व्यापक शान्त गुण जलरूप से जगत् में आ गया है और सर्वत्र शान्ति तथा सुख उत्पन्न करता है।

जितने नाम पदार्थों के हैं वे सब परमात्मा के भी हैं। इसका कारण यह है कि उस पदार्थ में प्रभु का वह गुण विशेष रूप से आया है, इसलिए वह पदार्थ उस नाम से प्रसिद्ध हुआ है।

## तीन आचमन तीन प्रकार की शान्ति के लिए

तीन बार आचमन करने के लिए दायीं हथेली में जल लेकर उसमें दृष्टि जमानी चाहिए और मनोभावना तथा मनः-संकल्प से तीन प्रकार की

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


शान्ति अर्थात् शारीरिक शान्ति (नीरोगिता), मानसिक शान्ति (स्थिरता, चंचलतारहित होना) और आत्मिक शान्ति (पवित्रता) के लिए एक-एक आचमन करना चाहिए। जब तक अपनी भावना दृढ़ रूप से दृष्टि द्वारा जल में न घुसा दो तब तक आचमन न करो, अर्थात् उस जल को इस प्रकार अपने भावों से प्रभावित (मैस्मेराइज़, Messmerise) कर दो।

## आचमन विधि

हथेली के बीच में जो गढ़ा-सा है, उसमें जल भरकर अंगुष्ठ के मूल और मध्यरेखा के मुख्य स्थान (ब्रह्मतीर्थ) से आचमन करना चाहिए, अर्थात् जल को धीरे-धीरे दोनों होठों से खींचकर अन्दर प्रविष्ट करना चाहिए।

## जल से कु-वृत्ति की रोक तथा सात्विक वृत्ति को जगाना

जैसे बेहोश आदमी पर जल छिड़कने से उसे होश आ जाता है, ऐसे ही यदि काम-कुवासना उठे या क्रोध आदि आए तो जल का घूंट पीने से ये कु-वासनाएं तुरंत शान्त हो जाती हैं, अतः जल अन्तःकरण और मस्तिष्क को भी पवित्र करने वाला है। शीतल जल का आचमन राजसिक और तामसिक वृत्तियों को दबाकर सात्विक वृत्तियों को जाग्रत कर देता है।

अब इस मन्त्र के अर्थों पर इस प्रकार विचार करो–

## अर्थ

वह (आपः) सब कामनाओं को प्राप्त कराने वाली (देवी) दिव्य प्रभुशक्ति (नः) हम सबके लिए (अभिष्टये) अभीष्ट सिद्धि के लिए और (पीतये) परम रस का पान करने के लिए (शम्) शान्तिदायिनी (भवन्तु) होवे और (शंयोः) सुख को (अभिस्रवन्तु) बरसावे।

देवी–महाराज! मैं तो इन अर्थों के साथ इस मन्त्र को जपती हूँ– 'हे कल्याणकारी! दिव्य गुणयुक्त! सर्वव्यापक प्रभो! हमारी मनोवांछित तृप्ति तथा आनन्द के लिए आप शान्तिदाता हों और चारों ओर सुख की अमृत-वर्षा करो।'

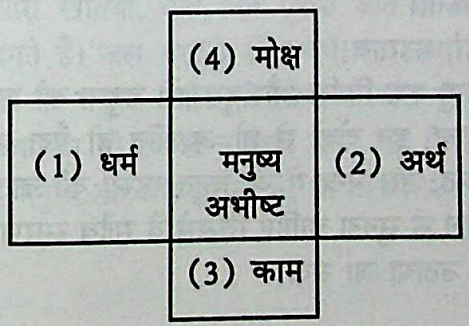
CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वनी–पुत्री! ये अर्थ भी ठीक है। दोनों में कोई भेद नहीं। केवल शब्द-परिवर्तन है, भाव तो एक ही है। इस आचमन-मन्त्र को पढ़ने और जल हाथ में लेकर आचमन करने का भाव ही अन्तःकरण पर जमाने की आवश्यकता है। मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति का आरम्भ भी शान्ति से है और समाप्ति भी शान्ति पर ही है। जिस उद्योग से अन्त में परम शान्ति का लाभ न हो वह व्यर्थ ही है, और जो उद्योग शान्त तथा समाहित चित्त से न किया जाये वह कभी सफल नहीं हो सकता, अतः इस आध्यात्मिक उद्योग (सन्ध्या) का आरम्भ ही **शंनो देवी** से हुआ है और समाप्ति भी 'नमः शम् भवाय' से। इस शान्ति की प्रार्थना को जीता-जागता रूप देने से वह पदार्थ लिया गया है जो इस स्थूल जगत् में शान्ति का सुलभ साधन है।

देवी–महाराज! अपने अर्थ सुनाने से मेरा वास्तविक आशय अपनी शंका मिटाने का था कि चारों ओर से पूर्व-पश्चिम-उत्तर और दक्षिण ही अभिप्रेत (मुराद) हैं या इसमें कोई और आध्यात्मिक बात है?

वनी–बेटी! **अभि** शब्द का अर्थ किसी ने **सब ओर से** कर दिया है और किसी ने **चारों ओर** से। इससे पूर्व-पश्चिम दिशाएं तो अभिप्रेत नहीं, नहीं तो ऊपर-नीचे की दिशाओं का एतराज़ खड़ा हो जायेगा। मनुष्य की अभीष्ट दिशाएं (अवस्थाएं) चार हैं–शरीर के लिए अर्थ, मन के लिए काम, बुद्धि के लिए धर्म, और आत्मा के लिए मोक्ष। इन चार पदार्थों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि ही अभीष्ट है। इन चारों की प्राप्ति ही परम शान्ति कही जा सकती है, अन्यथा नहीं। इसका रूप यों देखो! यही **चारों ओर** है, यही **सब ओर** है, और यही सब कुछ है–




CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

# उद्देश्य-प्राप्ति का प्रथम साधन

## अंगस्पर्श-मन्त्र की व्याख्या

युवक—महाराज! आचमन मन्त्र में जल-प्रयोग का अभिप्राय तो समझ में आ गया, वह यह कि इससे चित्त शान्त हो जाता है और शान्त चित्त होकर प्रभु-भजन में बैठने से ही कुछ लाभ हो सकता है। कृपा करके अब यह भी समझा दीजिये कि अंग-स्पर्श में जल-प्रयोग से बल तथा यश किस प्रकार अंग में आ सकता है?

वनी—बेटा! यह मन्त्र बड़ा ही मार्मिक मन्त्र है। वास्तव में सन्ध्या, भजन, प्रभु-पूजा, भक्ति, आदि की नींव ही इस मन्त्र और इससे अगले मन्त्र पर है। आचमन मन्त्र में केवल इसका आरम्भ ही है। उसमें तो केवल मनुष्य-जीवन का उद्देश्यमात्र ही दर्शाया गया है, अर्थात् मनुष्य को प्रभु पूजा इसलिए करनी चाहिए कि उसे इस जीवन में शान्ति और सुख की प्राप्ति हो। यह तो हम सब जानते ही हैं कि जिस पदार्थ की इच्छा की जाये, उसे प्राप्त करने के लिए परिश्रम और पुरुषार्थ अर्थात् कर्म करने की आवश्यकता होती है। कारण, बिना कर्म किये किसी की कोई इच्छा कभी पूरी नहीं हो सकती।

युवक—हां, महाराज!

वनी—किन्तु एक निर्बल और दुराचारी मनुष्य को शान्ति कैसे मिल सकती है? कारण, इन दोषों से तो अशान्ति ही पैदा होती है, शान्ति कदापि नहीं। अतः इस मन्त्र में जो बहुत रहस्य की बात बताई गई हैं, उन्हें सबको ध्यान से सुनना चाहिए जिससे वे सदैव स्मरण रहें और समय पर उनसे लाभ उठाया जा सके।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## १. जल से जीवन

सुनो! जल ही बल है, जीवन है। यह मैं पहले भी बतला चुका हूँ कि जल जितना गहराई में होता है, वहां के मनुष्य उतने ही लम्बे, तगड़े और हृष्ट-पुष्ट होते हैं। उदाहरणरूप से रोहतक, हिसार, राजपूताना आदि प्रान्तों को देख लो।

थके-मांदे पथिक जो गर्मी में चल नहीं सकते, जब दो घूंट जल पी लेते हैं तो उनमें नई हिम्मत आ जाती है। बग्घी-तांगों के घोड़े और छकड़ों के बैल जब गरमी से बेहाल हो जाते हैं और एक पग भी आगे नहीं चल सकते, तब उन्हें थोड़ा-सा जल पिला दो, तुरन्त उनमें नया जीवन आ जायेगा और वे कोसों पैंडा (रास्ता) काट डालेंगे।

जल हमारी जीवन-रक्षा का भी कारण है। देखो, वायुयान (हवाई जहाज़), जलयान (जहाज़), रेल, मोटर, मोटरसाईकिल, सभी जल के बिना बेकार हैं। इसीलिए तो यह कहा है कि जल ही तल है, जल ही मल है, जल ही फल है, जल ही अल है, जल ही रल है, जल ही चल है और जल से रल है। जल में आकर्षण (मिलाप की शक्ति) होने के कारण प्रभु का मिलाप भी इसी जल के गुण से ही होगा।

## २. जल से यश

परमात्मा की समस्त सृष्टि, विशेषतः वनस्पति तथा औषध आदि को सौन्दर्य प्रदान करने वाला जल ही है, जिसे देखकर अनायास ही मनुष्य प्रभु का गुणगान करने लगता है। कुछ काल तक वर्षा न हो, जल न बरसे तो सारी खेतियां, वृक्ष, वन मुरझा जाते हैं अर्थात् अधमरे-से दिखाई देने लगते हैं। जल बरसते ही सबमें एक नया जीवन और नया यौवन आ जाता है। मनुष्य-शरीर की शोभा तो जल से ही है। यदि जल न हो, तो वह कपड़ा भी स्वच्छ न पहन सके। यह निर्णय तुम्हीं कर लो कि मैले वस्त्र मनुष्य का यश कराते हैं, या अपयश?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## ३. जल से बल

संसार में बल भी कई प्रकार का है–धन-बल, जन-बल, शारीरिक बल, सामाजिक बल, बुद्धि-बल, आत्मिक बल आदि। इन सभी का आश्रय जल है। कारण, जल से ही समस्त अन्न तथा सम्पत्ति पैदा होती है, यहां तक कि सन्तान-उत्पत्ति भी जल से ही होती है। मेधा बुद्धि का सम्बन्ध पहले ही जल से बतलाया जा चुका है। समाज-बल संगठन से बढ़ता है। जितना भी हम एक-दूसरे को खाने-पीने के लिए पूछेंगे, उतना ही संगठन सुदृढ़ होगा। मुसलमानों में यह गुण हिन्दुओं की अपेक्षा बहुत अधिक है, तभी वे संख्या में हिन्दुओं से कम होते हुए भी उनसे बहुत बलिष्ठ हैं। अतः यह मानना पड़ेगा कि जल में संगठन बनाने का गुण है। यह इसका सूक्ष्म गुण समझा जा सकता है। इसीलिए यह गुप्त, विस्तृत और बड़ा प्रभावशाली है।

## ४. स्पर्श क्रिया

अंग-स्पर्श का अर्थ है **जल से अंगों को छूना**। इसमें जल से अपनी मानसिक भावना और दृष्टि द्वारा अपने प्रत्येक अंग को हिप्नोटाइज (Hypnotise, प्रभावित) करना पड़ता है। इसकी विधि यह है कि बायीं हथेली पर जल लेकर मध्यमा और अनामिका इन दोनों अंगुलियों को मिलाकर जल छुएं और फिर जिस-जिस इन्द्रिय का नाम लिया जाये उस-उस के दायें और बायें इन अंगुलियों से जल लगाएं।

## ५. पवित्रता : ब्रह्मचर्य

अब यूं समझो कि यह मन्त्र साधन है उस साध्य का, जिसका निरूपण प्रथम मन्त्र में किया गया है। साधन के बिना सिद्धि नहीं हो सकती, यह मैं पहले ही कह चुका हूँ। अन्तःकरण की पवित्रता होती है कर्म से। कर्म किया जाता है शरीर से, शरीर संगठन है ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का। अतः मनुष्य-शरीर का बल तभी बढ़ेगा, जबकि वह ब्रह्मचर्य रक्खेगा और अपनी इन्द्रियों का दमन करेगा, संयमी बनेगा। यश

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


बढ़ेगा तब, जब वह किसी की सेवा करेगा। सेवा करने के लिए धन-सम्पत्ति चाहिए। धन-सम्पत्ति का साधन है व्यवहार। यह व्यवहार इन्द्रियों के सिवा और कौन कर सकता है? अतः हमें इन इन्द्रियों से सदैव शुभ कर्म कराके ही यश तथा बल प्राप्त करना है और इन दोनों का ही साधन जल है।

## ६. कर्मेन्द्रियां

इस मन्त्र में दश आवश्यक अंग गिनाये गये हैं, जिनसे व्यवहार किया जाता है। पहला अंग गिना **वाक्-वाक्**। यहां यह प्रश्न हो सकता है कि न सिर से ही आरम्भ किया जाये, जो सबसे ऊपर है, और न पैर से ही, जो सबसे नीचे है, और न नाभिसे ही, जो बीच में है, **वाक्** से क्यों आरम्भ किया गया है? यह पहला रहस्य है समझने का। अब मैं तनिक आपसे एक प्रश्न कर लूं। वह यह कि आपको प्रभु की लीला अद्भुत जान पड़ती है, या वैसी ही बनी हुई? तनिक सोचो तो सही! मनुष्य की आंखें ऊपर हैं और कान पहलू में नीचे, और पशु के कान ऊपर हैं और आंखें नीचे, यह क्यों? अन्य सब पशुओं के कान हिलते हैं, किन्तु मनुष्यों के नहीं हिलते?

यह प्रश्न सुनकर सब चकित रह गये और एक-दूसरे की ओर देखने लगे। किसी से भी कुछ उत्तर न बन पड़ा।

अन्ततः वनी जी बोले–'बस मित्रो! अब हैरान न होवो। इन आश्चर्यजनक बातों को हल करने के लिए ही पुरुष संसार में आया है। जब ये बातें हल हो गईं तो समझो वह मुक्त हो गया, समझदार और बुद्धिमान् बन गया, नहीं तो सदैव हैरान, चकित और बेसुध-सा रहकर जन्म-जन्मान्तर में फंसा रहेगा।

इस भ्रम (हैरानी) को दूर करने के लिए ध्यानयोग की आवश्यकता है। यह सन्ध्या ध्यानयोग भी है। यदि आप छोटी-छोटी बातों पर ध्यान दें तो आपको वास्तव में बड़ा आनन्द आयेगा। प्रभु के सभी कार्य बुद्धिपूर्वक हैं–

**बुद्धिपूर्वा वाक्प्रकृतिर्वेदे।**

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् 'अत्यन्त शुद्ध ज्ञान और पूर्ण सिद्धिवाले प्रभु ने वेद-मन्त्रों की रचना की है। संसार में कोई पदार्थ भी बेकार नहीं बनाया किन्तु नियम यह है कि जो वस्तु बुद्धि से बनाई गई है, उसे बुद्धि से ही जाना भी जायेगा। जब इन इन्द्रियों का नियमपूर्वक संयम किया जाता है, तो सारे गुप्त रहस्य स्वयंमेव खुल जाते हैं।

अब सुनो! **वाक्** से यह सिलसिला क्यों आरम्भ हुआ और **करतल करपृष्ठे** पर क्यों अंत हुआ? देखो यह वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, नाभि, हृदय, कंठ, सिर से चक्कर लगाता हुआ फिर बाहु तथा कर पर समाप्त होता है, परन्तु क्यों? वस्तुतः यही समझाने की बात है।

## ७. प्रधान कर्मेन्द्रियां

वाणी और हाथ, ये दोनों ही प्रधान कर्मेन्द्रियां हैं। इनमें ही (अ) वाक् की पुष्टि हाथ करता है। जिह्वा से कहा जाता है और हाथ से कार्य किया जाता है, तब कहीं वचन तथा कार्य समान होकर मनुष्य का सफल-मनोरथ होता है और सच्चा कहलाता है। यदि जैसा जिह्वा कहे वैसा काम न करे, तो वह झूठा समझा जाये। कभी-कभी मनुष्य किसी से कुछ प्रतिज्ञा करता है। समय बीतने पर जब उसे याद दिलाया जाता है, तो वह कहता है कि मैंने प्रण नहीं किया था और न कहा ही था, मुझे याद ही नहीं पड़ता। किन्तु जब उसे उसके हाथ का लिखा दिखा दिया जाये, तो उसे अपना प्रण ठीक-ठीक स्मरण आ जाता है। इसलिए जिह्वा की पुष्टि हाथ करता है। जिह्वा से किसी को कहो **चुप रहो**; यदि वह चुप नहीं होता तो उसके मुंह पर हाथ रखकर चुप करा दिया जा सकता है। किसी को जिह्वा से कहो **इधर आओ**; वह न आवे तो हाथ से पकड़कर उससे आज्ञा पालन कराई जा सकती है।

(आ) वाक् (जिह्वा) है तो कर्मेन्द्रिय, परन्तु इससे बोला भी जाता है और चक्खा भी। यह दो कार्य करती है—बोलती भी है और रस भी लेती है। ज्ञान का आरम्भ यहां से ही होता है और कार्य का अन्त भी यहां पर ही होता है। यदि कोई मनुष्य पढ़ना चाहता है, ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, तो गुरुवाणी से ही उस ज्ञान का आरम्भ होता होगा। इसलिए

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


इसे ज्ञान का आरम्भ कहा गया है और जिह्वा से कार्य का अन्त होता है सत्य पर।

जो मनुष्य जब तक भी सब प्रकार के शुभ तथा पुण्य कर्म करता रहे, किन्तु सत्यवादी न हो, वह तब तक परमात्मा और आत्मा का साक्षात् नहीं कर सकता। कारण, सच्चाई ही सबसे बड़ी भलाई है, सब भलाइयों की मां हैं तुम देखते हो कि संसार में भले तो बहुत हैं, परन्तु सत्यवादी कम हैं। इसलिए **वाक्** को प्रधान इन्द्रिय मानकर, उससे मन्त्र आरम्भ किया गया है। और–

(इ) जितने भी संसार के व्यवहार चलते हैं, उनका अधिक सम्बन्ध वाणी से है।

(ई) किसी मनुष्य के दुष्ट अथवा श्रेष्ठ होने की पहचान उसकी वाणी कराती है। गुण-अवगुण सब वाणी से ही पहचाने जाते हैं।

(उ) मनुष्य जब अपने मनुष्यत्व या किसी अन्य को कलंक लगाता है तो हाथ या जिह्वा से ही लगाता है और यही दोनों कर्म प्रधान इन्द्रियां हैं।

परमात्मा ने गोरे, गंदुमी और काले शरीर तो बनाये, किन्तु किसी की जिह्वा काली नहीं बनाई। यदि किसी की जिह्वा काली हो, तो यह दुर्गुण गिना जाता है; न किसी के हाथ की हथेली ही काली बनाई है। इससे अभिप्राय यह जान पड़ता है कि मनुष्य अपनी जिह्वा तथा हाथ को कलंकित न बनाये, क्योंकि वह अपने शरीर से निष्कलंक पैदा हुआ है।

## अपनी महान शक्तियों को भिखारी न बनाओ!

(ऊ) मनुष्य-शरीर में दो बड़े भिखारी हैं। एक तो जिह्वा और दूसरा हाथ। यही दोनों बड़े दानी भी हैं। यही शासक और शक्तिशाली भी हैं और यही दंड देने वाले भी। दंड भी इन्हीं को बड़ा मिलता है। जिस मनुष्य ने इन दोनों शक्तियों को भिखारी बना दिया, वही संसार में गिर गया और परलोक (अगले जन्म) में बहुत नीचे जा पहुंचा, और जिसने इन्हें संभाल लिया, वह आप भी सबकी संभाल बन गया।

मंगता (भिखारी) जिह्वा से मांगता है, गिड़गिड़ाता है और भीख लेने के लिए हाथ सामने बढ़ाता है और उठाता है। इसकी प्रधानता से ही

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मनुष्य प्रधान कहलाता है। पशु में न तो वाक् (वाणी) ही है और न हाथ ही। मनुष्य द्रव्य का दान हाथ से देता है और विद्या (ज्ञान) का दान वाणी से। इसलिए शास्त्रकारों ने यही मुख्य तथा मौलिक (बुनियादी) चीजें पहले रक्खी हैं जो मनुष्य की आत्मिक उन्नति का साधन हैं।

## कर्म-खण्ड की वाणी जोर

यह गुरु नानकदेव जी का वाक्य है, अर्थात् उसी मनुष्यवाणी में बल होता है जो क्रियाशील (आमिल) है। महापुरुषों, भक्तों की वा सन्तों की वाणी में देखो कितना बल होता है! अधम से अधम और पापी से पापी उनके एक वचन से धर्मात्मा बन जाते हैं।

(1) ऋषि दयानन्द जी महाराज जेहलम में उपदेश कर रहे थे। वहां एक तहसीलदार थे, पं. अमींचन्द महता। वह रिश्वत खाने वाले, शराबी और व्यभिचारी थे, परन्तु रागी (गान-विद्या-विशारद) थे। एक दिन कोई सज्जन उन्हें महाराज के सत्संग में ले आया। जब उपदेश हो चुका तो किसी ने कहा, 'महाराज! यह तहसीलदार साहब बड़े रागी हैं और कवि भी।' ऋषि ने कहा, **कुछ सुनाओ!** तहसीलदार साहब ने गाया। महाराज अति गद्‌गद हो गये; बोले–**अमींचन्द! तुम हो तो हीरा किन्तु कीचड़ में पड़े हो।**

बस, यही शब्द थे जिनसे अमीचंद की काया पलट गई; तुरन्त सारे दुर्व्यसन त्याग दिये। मन और मस्तिष्क में यही रट रहती। जब कोई कुवासना मन में आती, तुरन्त ऋषि के शब्द आकर रक्षा करते। मन कह उठता–**अमीचंद, तुम हो तो हीरा किन्तु कीचड़ में पड़े हो।** अन्ततः यह घटना प्रसिद्ध हो गई। सरकारी अफसरों ने आज्ञा भेजी–**आपको अफसर-माल बनाया जाता है!** इन्हें तरंग आई, त्यागपत्र भेजा–

नहीं प्यारी तहसीलदारी, नहीं जची दरगार।
यदि रखो अपनी सेवा में, किंकर चौकीदार।।
हूं गवर्नर तब क्या बनेगा, जाऊंगा अन्त सिधार।
अमींचन्द जैसे नीच को तारो!
हे पिता! पतित-उद्धारणहार!

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


(2) एक स्थान पर एक साहूकार धर्मात्मा था, किन्तु उसका इकलौता पुत्र महादुर्व्यसनी (ऐबी)। महाराज उपदेश कर रहे थे। किसी ने साहूकार से कहा, **लड़के को महाराज के पास ले जाओ, सुधर जायेगा!** उसने कहा, **मुझे तो लज्जा आती है। आप ही उपकार करें** अस्तु, उस सज्जन ने उस युवक को उसके मित्रों द्वारा महाराज की सेवा में पहुंचाया। महाराज को उस सज्जन ने सब वृतान्त पहले ही सुना रखा था; पूछा–**लड़के! विवाहित हो?** लड़का बोला, **हां महाराज!**

'तुम मांस-मदिरा का सेवन और वेश्या-गमन भी करते हो?'

'महाराज, हां! साधुओं के सामने झूठ कैसे बोलूं!'

महाराज ने कहा, **हमारी एक बात सुनोगे?**

लड़का बोला, 'हां महाराज!'

महाराज–'यदि उस वेश्या से कन्या हो जाये तो वह किसकी कहलायेगी?'

लड़का बोला, **मेरी।**

महाराज ने कहा, 'यदि वह पेशे पर बैठ जाये, तो तुम्हें लज्जा तो न आएगी?'

यह सुनते ही युवक सचेत हो गया; शपथ खाई–**सब दुर्व्यसन त्याग दिये!** आशीर्वाद लिया और धर्मात्मा बन गया।

ऋषि और अन्य धर्मात्माओं के भी ऐसे ही अनेक उदाहरण मिलते हैं।

## ८. यश और बल

मनुष्य का शारीरिक बल बढ़ता है उत्तम आहार और व्यायाम से, परन्तु उस बल से यश नहीं होता। पहलवान् बलवान् अवश्य होते हैं, परन्तु यशस्वी नहीं। ब्रह्मचर्य से भी बल आता है, परन्तु ब्रह्मचर्य केवल वीर्य्य-रक्षा करने का ही नाम नहीं है, वीर्य्य इसकी नींव अवश्य है। ब्रह्मचर्य के शब्दार्थ हैं–**ब्रह्म में विचरण करना।** ब्रह्म नाम है सत्य का, सत्याचरण का। समस्त इन्द्रियों से सद्व्यवहार करना ही ब्रह्मचर्य है। इस ब्रह्मचर्य्य से जो बल आता है वही यश पैदा करता है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य-शरीर बतला रहा है कि मनुष्य कर्म करने के लिए ही संसार में आया है और इसके पवित्र कर्मों से ही संसार में सुख तथा शान्ति हो सकती है–

**दुनिया यह कर्म-क्षेत्र है, कोई सैरगाह नहीं।**
**जब तक है सांस तन में, प्रभु को भुला नहीं॥**

अथवा श्री गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्दों में–

**कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।**
**जो जस कीन सो तस फल चाखा।**

इसीलिए प्रभु ने **कर्मेन्द्रियां बड़ी बनाई** हैं और ज्ञानेन्द्रियां छोटी; किन्तु ज्ञान बिना कर्म निकृष्ट है, इसलिए ज्ञानेन्द्रियों को ऊपर स्थान दिया गया है और कर्मेन्द्रियों को नीचे। अब एक-एक इन्द्रिय का बल तथा यश किस-किससे बढ़ता है यह भी सुनो–

| | **बल बढ़ता है किससे?** | **यश होता है किससे?** |
|---|---|---|
| (अ) वाणी का | सत्य से | प्रिय और मधुर बोलने से। |
| (आ) प्राण का | श्वास-श्वास में प्रभु-स्मरण से। | दूसरे की प्राण रक्षा करने से। |
| (इ) चक्षु का | लज्जा से। | सबको मित्र-दृष्टि से देखने से। |
| (ई) श्रोत्र का | ज्ञान तथा सत्योपदेश सुनने से। | दीनदुखी की पुकार सुनने से |
| (उ) नाभि का | ब्रह्मचर्य तथा संयम से। | उत्तम तथा सुसन्तान पैदा करने से। |

## वाणी की विशेषताएं

**निर्मल वाणी** **निर्दोष वाणी**

(अ) जो वाणी व्यवहार सम्बन्धी मल (लोभ) से रहित होकर बरती जाती है वही निर्मल है अर्थात् अस्तेय, छल और कपट से रहित।

(आ) जो वाणी कटु (कड़वी), अशुभ (बुराई से भरी) और अशिव (अकल्याणकारी) नहीं और अहंकार-रहित है वही निर्दोष है। जैसे चुम्बक लोहे को खींचता है वैसे उसकी वाणी धन को खींचती है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


| बल बढ़ता है किससे? | | यश होता है किससे? |
|---|---|---|
| (अ) हृदय का | धैर्य तथा सन्तोष से। | उदारता और नम्रता से। |
| (आ) कण्ठ का | शुद्ध कविता से। | उत्तम स्वर-आलाप से। |
| (इ) सिर का | निश्चयात्मक बुद्धि (सुविचार से) | विद्यादान से या शीशदान से |
| (ई) बाहु का | अपने ऊपर विश्वास रखने से। | दीन-पतित का भार अपने ऊपर लेने से। |
| (उ) करतल का | तल (हथेली) के साफ लेन-देन और पवित्र कमाई से। | कर-पृष्ठे का यश गुप्तदान और करुणा से। |

## जल कहां लगायें?

अंगस्पर्श करते हुए जब साधक बल तथा यश की अंगुलियों से शीतल जल लगाकर एक-एक अंग को छुएगा और अपनी मनोभावना अथ-विचार सहित मन में बोलेगा तो जल में वे भाव अंकित होकर उस स्थान को प्रभावित (इंजैक्शन) कर देंगे। प्रतिदिनि ऐसे अभ्यास मनुष्य के मन तथा मस्तक पर एक न एक दिन बड़ा प्रबल प्रभाव पैदा कर देते हैं। जितना-जितना भाग उस स्थान का है, उतने ही भाग तक जल लगाना चाहिए। नाभि पर गोलाकार में चार अंगुल उसके आसपास जल लगाना चाहिए, इससे जठराग्नि प्रदीप्त होती है, और कामवासना रुकती है। जब दोनों नासिका बंद हों और सांस न चले तो नाभि के चारों ओर हाथ फेरने से तुरन्त नासिका खुल जाती है और प्राण सुगमता से चलने लगता है। नाभि के शुद्ध रहने से प्राण की गति ठीक रहती है और वीर्य्य-रक्षा होती है। सिर पर तालु से चोटी तक, बाहु पर कन्धे से डौले (डंड) तक एक लीक के समान जल लगाना चाहिए।

## ईश्वरीय पिण्ड-रचना से उपदेश

परमात्मदेव ने मनुष्य-शरीर की रचना से यह प्रकट किया है अथवा यह शिक्षा दी है कि मनुष्य अपनी आंखों से अपने मुख अथवा अपनी

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


ज्ञानेन्द्रियों को नहीं देख सकता। यदि वह कुछ देखता है तो गरदन के नीचे के शरीर को, जिसमें सारी कर्मेन्द्रियां हैं। इससे प्रभुभक्त को यह शिक्षा मिलती है कि वह सदा अपने कर्म पर दृष्टि रखे और देखता रहे कि उसमें कहीं कोई दोष तो नहीं आ गया है? ज्ञानेन्द्रियों को न देख सकने से उसको यह समझना चाहिए कि हमें अपने ज्ञान को बड़ा समझकर उस पर इतराना नहीं चाहिए।

भीमसेन–महाराज! अपने कर्म पर दृष्टि कैसे रक्खों कि कहीं मैंने झूठ तो नहीं बोला या क्रोध तो नहीं किया? अन्य इन्द्रियों से क्या पाप हो सकते हैं? हम तो विद्यार्थी हैं, हमसे और कोई पाप होने की सम्भावना है ही नहीं।

वनी–बेटा! पाप तो अनेक हैं जिनका मनुष्य को ज्ञान नहीं। गिना तो मैं देता हूं, आगे तुम आप सावधान रहना।

## ९. आत्म निरीक्षण

मनुष्य की इन्द्रियों में छिद्र हैं, अतः इन छिद्रों द्वारा मनुष्य में बहुत से अवगुण भर गये हैं। परमात्मा ने आभ्यान्तरिक मल बाहर निकालने के लिए छिद्र दिये थे, परन्तु हमने बाहर से बुराइयों के मल अपने अन्दर प्रविष्ट कर लिये। अतः हमें सदैव उन दोषों की पड़ताल करते रहना चाहिए। इसी का नाम आत्म-निरीक्षण है।

**जिह्वा** (वाणी) के अवगुण–1. झूठ बोलना, 2. व्यर्थ बोलना, 3. वाद-विवाद, 4. गाली, 5. निन्दा, 6. चुगली, 7. कटु, 8. कठोर, (9) असभ्य, 10. अशुभ वचन, 11. खुशामद, 12. विश्वासघात, 13. छल, 14. शराब पीना, 15. मांस खाना, 16. तम्बाकू खाना और पीना, 17. भांग पीना, 18. चरस पीना, 19. अफीम खाना, 20. तामसिक आहार।

**आंख के अवगुण**–1. कुदृष्टि, 2. दूसरे को बढ़ता देखकर डाह करना, 3. द्वेष, 4. गन्दा साहित्य पढ़ना।

**कान के अवगुण**–1. अश्लील राग सुनना, 2. पर-निन्दा सुनकर सुख मानना, 3. अपनी स्तुति सुनकर हर्षित होना।

**हाथ के अवगुण**–1. कम तोलना, 1. कम नापना, 3. लूट लेना,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


4. सेंध लगाना, 5. झूठ लिखना, 6. जालसाजी करना, 7. जुआ खेलना, 8. अकारण मारना।

इसी प्रकार सब अवगुणों की पड़ताल करनी चाहिए। अभ्यास के कारण मनुष्य दोष तो बहुत करता है, किन्तु उसे ज्ञान नहीं होता। सबसे अधिक दोषों का केन्द्र मन है। इसमें अनेक छिद्र हैं–1. अहंकार, 2. ईर्ष्या, 3. राग, 4. द्वेष, 5. क्रोध, 6. निर्दयता, 7. प्रमाद, 8. लोभ, 9. स्वार्थ, 10. चोरी, 11. मक्कारी, 12. मोह, 13. हत्या, 14. पेटूपन, 15. अनर्थ, 16. कठोरता, 17. असत्य, 18. कृपणता, 19. काम, 20 डाह, 21. कृतघ्नता, 22. बुरा चिन्तन, 23. बुरी इच्छा, 24. दूसरे को कष्ट में देखने की इच्छा, 24. दुखिया का दुख देखकर खुश होना, 26. मन में व्यर्थ भावनाएं लाना, 27. मन से दुर्विधियों का चिन्तन करना, इत्यादि-इत्यादि।

## १०. जिह्वा एक, 'वाक् वाक्' दो बार

युवक–महाराज जो इन्द्रियां दो-दो हैं, उन्हें इस मन्त्र में दो-दो बार गिनाया गया है और जो एक हैं, उन्हें एक-एक बार। किन्तु जिह्वा के एक होते हुए भी दो बार **वाक् वाक्** क्यों कहा गया?

वनी–विद्वान् अपने-अपने विचार से इसका उत्तर भिन्न-भिन्न देते हैं–**अ.** कोई कहता है एक तो स्वयं वाणी, दूसरी वाणी की शक्ति। किन्तु यह असंगत सा हो जाता है, क्योंकि नाभि और हृदय आदि एक-एक के लिए भी दो-दो बार नहीं कहा जाता, उनकी भी तो शक्ति और गोलक दो जुदा चीजें ही हैं। **आ.** कोई कहता है कि नाद-ध्वनि और भाषा के लिए दो-दो बार आया है। पशु नाद करते हैं और मनुष्य नाद और भाषा दोनों बोलता है। **इ.** कोई कहते हैं वाणी की स्थूल तथा सूक्ष्म दो शक्तियां हैं। किन्तु मैंने अपना उत्तर तो पहले ही आपको बता दिया है कि जिह्वा (वाणी) से ज्ञान का आरम्भ और कर्म का अन्त है। यह ज्ञान और कर्म दोनों के लिए प्रयोग होता है, अतः दोनों के लिए ही बल तथा यश की प्रार्थना है–सत्य ज्ञान से बल और सत्य कर्म से यश की। **ई.** इससे उच्च तर्क एक और है–पूज्य श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज ने एक बार अलीपुर (जिला मुजफ्फरगढ़) में अपने उपदेश में कहा था कि देखो,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


**वाक्-वाक्** क्यों दो बार आया है?'' और उत्तर में यह उदाहरण दिया कि एक पहलवान बड़ा डीलडौल का और बलिष्ठ, पूरा पहलवान है। जब कोई मनुष्य उसे देखता है, तो तत्काल कह उठता है–'वाह! यह पहलवान असली पहलवान है', या जैसे कोई न्यायाधीश (जज) न्याय करे और पूरा तौल-ताल, बड़ी घुम्मरघेर पेचीदगियों में पहुंचकर उसकी घुण्डी खोल दे और अपना निर्णय सुनाये तो लोग कहते हैं कि ''भाई! यही न्याय **न्याय** है और यह जज जज है, अर्थात् जैसे पूरे सोलह आने कोई चीज होनी चाहिए। दूसरी बार शब्द बोलने से उसका सत्य साक्षी हो जाता है। जिह्वा (वाक्) एक है और संसार में सत्य भी एक ही है, किन्तु झूठ अनेक हैं। जब किसी का वचन सोलह आने सत्य हो तो कहते हैं–'यार, उसका वचन वचन है!' अर्थात् यह **वाक्** शब्द दूसरी बार उस इन्द्रिय के पूरे सोलह आने सत्यवादिनी रहने के लिए समर्थन (ताकीद) अथवा साक्षीरूप में कहा जाता है। अब इस मन्त्र पर ध्यान दीजिए–

**ओं वाक् वाक्, ओं प्राणः प्राणः, ओं चक्षुः चक्षुः, ओं श्रोत्रं श्रोत्रं, ओं नाभिः, ओं हृदयम्, ओं कण्ठः, ओं शिरः, ओं बाहुभ्यां यशोबलम, ओं करतल-करपृष्ठे।**

अर्थात् प्रभु-कृपा से मेरी वाक् और सब इन्द्रियों को बल और यश प्राप्त हो। हां तो यह विषय समाप्त हो गया। यदि किसी को और कुछ पूछना हो तो पूछ ले, नहीं तो अगला मन्त्र आरम्भ किया जाये।

देवी–आपने जो कहा है कि 'पशु के कान ऊपर हैं तथा आंखें नीचे, और मनुष्य की आंखें ऊपर हैं तथा कान बराबर में, और पशु के कान हिलते हैं किन्तु मनुष्य के टिके हुए, इनका अभिप्राय क्या है?

वनी–1. मनुष्य साक्षात् करने के लिए आया है। जब तक पदार्थ का साक्षात् नहीं कर लेता, तब तक उसे नहीं अपनाता। इसका त्याग तथा ग्रहण साक्षात् पर निर्भर है; सुनी-सुनाई और कही हुई बात भूल जाती है, किन्तु आंखों-देखी नहीं भूलती।

2. श्रुति में मनुष्य का उद्देश्य तम से प्रकाश की ओर जाना है, अतः यह प्रार्थना की गई है–

**ओम् असतो मा सद्गमय! तमसो मा ज्योतिर्गमय!!**
**मृत्योर्मा अमृतं गमयेति!!!**

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अर्थात् 'हे प्रभो! मुझे असत् से सत् की ओर, तम से प्रकाश की ओर और मृत्यु से अमृत की ओर ले चलिए' यही मेरी प्रार्थना है।

शरीर की समस्त इन्द्रियों में प्रकाश और ज्योति केवल आंख से मिली है, इसलिए यह सबसे ऊपर रखी गई है।

3. पशु के समान मनुष्य के कान नीचे नहीं बनाये गये, बराबर में बनाये गये हैं। कारण, श्रवण हमारे कार्य की प्रथम कक्षा (मंजिल) है और साक्षात् की अन्तिम; दोनों ही कार्य-कारणरूप हैं। सबसे पहले मनुष्य को श्रुति से ज्ञान मिला, यही तो श्रवण का मूल है; पीछे से उस ज्ञान का साक्षात्कार हुआ, यह साक्षात्कार मनन के पश्चात् ही हो सकता है, उससे पहले कदापि नहीं।

4. पशु के कान जो हिलते हैं, यह उसे एक प्रकार का दण्ड है। जब एक अध्यापक पाठशाला में उस लड़के को दण्ड देता है, जो उसकी आज्ञा नहीं मानता और अपने पाठ को दिल में स्थान नहीं देता, तो अध्यापक कहता है कि **इसके कान हिलाओ!** वह अध्यापक भी शायद इसके मर्म को नहीं जानता। किन्तु यह एक प्रथा-सी चली आ रही है। नहीं तो लड़के पर इसका अवश्य प्रभाव पड़ता कि इस प्रकार अध्यापक उसे यह प्रकट कर रहा है कि वह पशु है, मनुष्य नहीं। प्रभु की दया से मनुष्य के कान टिके हुए हैं, इससे यह शिक्षा लेनी चाहिए कि वह जिस बात को सुने उसे दिल में टिकावे। टिकाने के लिए मन को एकाग्र करना पड़ेगा, नहीं तो याद नहीं रहेगी, अतः जो मनुष्य अपने हित की बात को सुनकर भी मन में नहीं टिकाता, वह मनुष्यः नहीं, पशु के समान है कि उसने भी सुनकर कान हिला दिया, इसलिए आप सबको इस बुझारत की ओर ध्यान रखना चाहिए।

5. कर्मेन्द्रियों में जिह्वा और हाथ की प्रधानता है और ज्ञानेन्द्रियों में चक्षु तथा श्रोत्र की। इनका आत्मा के साथ सम्बन्ध है। वैज्ञानिकों ने पुतलियां बनाकर उनकी भी आंख, कान, नाक, मुख और पांव ऐसे बना लिये कि वे अपने हाथ, पैर, नाक और मुख से बिजली या गैस की सहायता से मनुष्य के समान काम कर दिखाएं। यहां तक कि आजकल तो युद्ध भी इनकी सहायता से लड़ा जाता है; किन्तु वे पुतलियां न उन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


आंखों से देख ही सकती हैं, और न उन कानों से सुन ही सकती हैं। रिकार्ड भरकर बेजान प्लेटों से गाने भी गवा दिये, ड्रामे भी करा दिये, लैक्चर और वेदमन्त्र भी सुना दिये, किन्तु आंख और कान के काम करने में असमर्थ रहे। कारण, आंख और कान में आत्मा ही साक्षी हो सकती है, वही आंखों का द्रष्टा और कानों का श्रोता है।

## शरीर श्री का साधन है

बाबू–महाराज! हमने तो कई साधु-सन्तों से यह सुन रक्खा था कि यह शरीर क्षणभंगुर है, मल का थैला है, इसे क्यों प्यार करते हो? आपने तो इसकी रचना बड़े ही काम की बतलाई!

वनी–नहीं भाई! ऐसे ब्रह्मज्ञानी तो सर्वथा मिथ्या ज्ञानी होते हैं। मनुष्य चारों पदार्थ–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इस शरीर से ही पाता है।

शास्त्रकार कहते हैं **शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्** अर्थात् निश्चय रूप से शरीर से ही धर्म के सब साधन हो सकते हैं। यह तो मंदिर है भगवान् का, जिसका सप्त-ऋषि पहरा देते हैं। दोनों आंखों में विश्वामित्र और जमदग्नि ऋषि, दोनों कानों में गौतम और भरद्वाज ऋषि, नासिका के दोनों नथनों में कश्यप और वसिष्ठ ऋषि और मुख में ऋषि। यदि मनुष्य यह जान जाये कि ये सब ऋषि उसकी रक्षा करने वाले हैं, तो जैसे एक योग्य सारथी लगाम को बस में रखकर घोड़ों को चलाता है और स्वामी को शीघ्र ही बिना किसी कष्ट के ठीक स्थान पर पहुंचा देता है, वैसे ही ये ऋषि भी अपने-अपने इन्द्रियरूप घोड़ों को ठीक़-ठीक चलाते रहें।

यजुर्वेद अध्याय 34 का मन्त्र 49 इसकी साक्षी देता है–

**ओं सहस्तोमाः सहच्छन्दस ऽ आवृतः सहप्रमा ऽ ऋषयः सप्त दंव्याः। पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा ऽ अन्वालभिरे रथ्यो न रश्मीन्॥**

अर्थात् 'जो राग-द्वेषादि दोषों को दूर से छोड़ आपस में प्रीति रखने वाले हों, ब्रह्मचर्य से धर्म के अनुष्ठानपूर्वक समस्त वेदों को जानके सत्य और असत्य का निश्चय कर सत्य को प्राप्त हो और असत्य को छोड़के आप्तों के भाव से बर्तते हैं, वे सुशिक्षित सारथियों के समान अभीष्ट धर्मयुक्त मार्ग में जाने को समर्थ होते हैं और वे ही ऋषि संज्ञक होते हैं।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


**ओं प्राणः प्राणः**

बाबू–इन सब अंगों के बल तथा यश की तो समझ आ गई, महाराज! किन्तु प्राण का बल **प्रभु-स्मरण** से यश और **दूसरे की प्राण-रक्षा** से कैसे बढ़ता है? इसकी भी कृपा करके व्याख्या कर दीजिए।

वनी–देखो भाई! भक्ति में शक्ति है। प्रभु में यदि हमारा श्वास-श्वास लगा रहे तो उससे कुछ पाप तो होगा नहीं, और सांस भी कम खर्च होंगे। इससे आयु बढ़ेगी, और साथ ही पाप न करने से शक्ति भी बढ़ेगी। दूसरों की प्राण-रक्षा होती है अन्न और जल के दान से। जहां दूसरों की सेवा की जाय, तो यश तो आप ही होगा।

**ओं नाभिः**

बाबू–जननेन्द्रिय भी तो एक इन्द्रिय है, महाराज! इसे तो गिना ही नहीं? केवल नाभि का संयम ही क्यों कहा है?

वनी–**नाभि** जनन यन्त्र का केन्द्र होने के कारण इससे नीचे की सभी इन्द्रियां इसमें शामिल समझी जाती हैं।

●●●

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

# पांचवीं सीढ़ी

## मार्जन मन्त्र : बल तथा यश की रक्षा

**ओं भूः पुनातु शिरसि!**
प्राणस्वरूप प्रभो! पवित्र करो सिर को!
**ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः।**
दुःख-विनाशक प्रभो! पवित्र करो नेत्रों को!
**ओं स्वः पुनातु कण्ठे!**
सुख स्वरूप प्रभो! पवित्र करो कण्ठ को!
**ओं महः पुनातु हृदये!**
महान् प्रभो! पवित्र करो हृदय को!
**ओं जनः पुनातु नाभ्याम्!**
जनक (जन्मदाता) प्रभो! पवित्र करो नाभि को!
**ओं तपः पुनातु पादयोः!**
तपोमय भगवन्! पवित्र करो मेरे पैरों को!
**ओं सत्यम् पुनातु पुनः शिरसि!**
सत्यशील प्रभो! पवित्र करो फिर मेरे सिर को!
**ओं खम् ब्रह्म पुनातु सर्वत्र!**
आकाश-सम व्यापक प्रभो! मुझे सर्वत्र पवित्र करो!

अब इन्द्रिय-स्पर्श के पीछे **मार्जनमन्त्र** आता है। **मार्जन** का अर्थ है मांजना, स्वच्छ करना, शुद्ध तथा पवित्र करना। शरीर को जल-स्नान से शुद्ध कर लिया। अब उसी जल से भावना सहित मन्त्र द्वारा शुद्धि करनी चाहिए।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


साधक किस चीज से शुद्ध करना चाहता है, जिससे कि वह प्रभु की परम ज्योति को टिका सके?

यह बात स्मरण रखनी चाहिए के ऋतुओं का और आठों पहर प्रत्येक बदलने वाले समय का मनुष्य-शरीर और मन पर दो प्रकार का प्रभाव पड़ता है—एक तो सामान्य, और दूसरा विशेष। सामान्य तो सब पर एक जैसा ही होता है, किन्तु विशेष भिन्न-भिन्न पुरुषों पर उसकी भावना के अनुसार होता है। अतः आचमन, इन्द्रिय-स्पर्श और मार्जन का भेद समझना आवश्यक है।

छींटे तो हमने स्पर्श में भी दे दिये थे। अब फिर यह मार्जन कैसा?

यश और बल को पाकर भी गिरने की सम्भावना रहती है। इन दोनों को स्थिर रखने के लिए ही पवित्रता की आवश्यकता है। बिना पवित्रता के ये दोनों (बल तथा यश) रज और और तम में बदलकर मनुष्य को फिर पापी बना देते हैं। मनुष्य जो शुभ कर्म भी यश के लिए करता है वे पवित्र नहीं समझे जाते।

पशु का मूल्य शरीर से है और मनुष्य का उसके **सदाचार** से। सदाचार ही मनुष्य का अस्तित्व है। अतः सबसे प्रथम **भूः पुनातु शिरसि** कहते हुए शरीर पर जो जल छिड़का जाये, उसमें यही सद्भावना होनी चाहिए।

मनुष्य-शरीर का अस्तित्व **प्राण** से है। **भूः** नाम है प्राण का; प्राण का स्थान है सिर, सिर रहने से ही मनुष्य जीवित है—सिर न रहे तो मृत। किन्तु मनुष्य का अस्तित्व **सदाचार** से है, अतः सदाचार ही प्राण है।

**भूः भुवः स्वः** आदि सभी प्रभु के विशेषणयुक्त (सिफाती) नाम हैं। इन्हीं विशेषण (गुणों) के धारण करने से मनुष्य में पवित्रता आती है और ये सब के सब गुण जल में हैं।, जो इस मन्त्र में आठ नामों से प्रकट किये गये हैं।

## आचार-विचार तथा आहार-व्यवहार

(अ) सिर की पवित्रता होगी सदाचार से, (आ) नेत्रआदि ज्ञानेन्द्रियों की पवित्रता होगी सुविचार से, (इ) कण्ठ की पवित्रता होगी शुद्ध विचार से, (ई) हृदय की पवित्रता होगी शुद्ध व्यवहार से।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अब पहले समझ लो कि सिर (1) नेत्र, कान, नाक, जिह्वा (2) कण्ठ (3) और हृदय से ही लोक-व्यवहार का सम्बन्ध है। इसके लिए मनुष्य की चार चीजें पवित्र होनी चाहिए–आचार, विचार, आहार और व्यवहार।

अगले भाग में इन चारों की पवित्रता को स्थिर रखने के साधन बतलाये गये हैं। नाभि की पवित्रता होगी ब्रह्मचर्य से और पद (पैरों) की तप से। ब्रह्मचर्य के बिना आचार, विचार, आहार और व्यवहार शुद्ध नहीं रह सकते। परन्तु इन सबका आशय है–**सत्यम् पुनातु पुनः शिरसि** अर्थात् 'सत्य की प्राप्ति, जिससे सिर अर्थात् मनुष्य-जीवन की पवित्रता है।' सत्य के धारण करने पर मनुष्य **सर्वत्र** फैल जाता है और सबको पवित्र करता है–यह **ओ३म् खम् ब्रह्म पुनातु सर्वत्र** का अर्थ है।

## दूसरा अर्थ

इसका एक दूसरा अर्थ भी हो सकता है। वह आरम्भ में ही इस मन्त्र के नीचे साथ-साथ शब्दार्थ रूप में लिख दिया गया है। इन साधारण अर्थों को तो प्रायः सभी सन्ध्या करने वाले जानते हैं। यह सुगम अर्थ है।

प्रभु के गुण याद करके नाम लेने से जल द्वारा वह स्थान तब तक कैसे पवित्र हो जायेंगे, जब तक इनका कोई अभिप्राय न हो? अतः पहले वह अभिप्राय समझिये!

**ओं भू पुनातुः शिरसि**

**भूः** का अर्थ है **प्राणरक्षक**। जो दूसरों के लिए प्राण देगा, या दूसरों के प्राण बचाने के लिए अपना सिर बलिदान करता है, उसी का सिर पवित्र समझा जाता है। ऐसे मनुष्य का यश सदा के लिए स्थिर रहता है और उसके पवित्र नाम में भी यह बल होता है जो औरों को उत्तेजना देता है। शहीदों के नाम लेने से प्रत्येक काम करने वाले में शक्ति पैदा हो जाती है।

**ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः**

**भुवः** का अर्थ है 'दुःखनाशक' जो दूसरों का दुख दूर करेगा, जिसकी आंख किसी का दुख सहन न कर सकेगी, जिसके कान किसी के कष्ट से भरी पुकार सुनकर रह न सकेंगे, उसकी ज्ञानेन्द्रियां पवित्र हो जायेंगी।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


**ओं स्वः पुनातु कण्ठे**

**स्वः** का अर्थ है **सुखस्वरूप**। जो अपने कण्ठ के स्वरालाप से दूसरों को प्रसन्न कर देगा, दूसरों का दूख दूर करेगा, उसी का कण्ठ पवित्र हो जायेगा।

**ओं महः पुनातु हृदये**

**महः** का अर्थ है **महान्, बड़ा**। जिन मनुष्यों का हृदय प्रत्येक छोटे-बड़े के लिए खुला है, जो निर्बलों और छोटों को अपने हृदय में स्थान देता है, अधर्मी तथा पापी के पाप का डटकर सामना करता है, उसी का हृदय पवित्र और महान् होता है।

**ओ जनः पुनातु नाभ्याम्**

**जनः** का अर्थ है **जननी**। जो जननी के समान पालन करता है, उसकी नाभि पवित्र हो जाती है।

**ओं तपः पुनातु पादयोः**

**तपः** का अर्थ है **तप करने वाला, या दण्ड देने वाला**। जो इन उपर्युक्त बातों की रक्षा के लिए कटिबद्ध हो जाता है, तप करता है, उसके पैर पवित्र होते हैं और उसके पवित्र चरणों पर सब झुकते हैं और उन्हें चूमते हैं।

**ओं सत्यं पुनातु पुनः शिरसि**

सत्य के लिए अपना सर्वस्व, अर्थात् सिर तक दे देना ही सिर को पवित्र करता है। उसका सिर जन्म-जन्मान्तर तक पवित्र रहता है। पुनः पुनः उसका नाम स्मरण किया जाता है।

**ओं खम् ब्रह्म पुनातु सर्वत्र**

**खम्** का अर्थ है **व्यापक आकाश के समान**। निर्मल-दोष वीतराग पुरुष ही सर्वत्र पवित्र होता है।

यह सन्ध्या-भक्ति, प्रभु-पूजा और अन्य क्रियाएं केवल इसलिए हैं कि मनुष्य पवित्रात्मा बन जाये, वह स्वयं शान्ति पाए और दूसरों को शान्ति दे। आत्मिक ज्ञान के बिना प्राकृति विज्ञान त्रिकाल में भी शान्ति नहीं दे सकता। यदि इस भौतिक शरीर के समान आध्यात्मिक शरीर को भी बना लिया जाये तो साधक को अपने साधन करने में आध्यात्मिक

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


शरीर को देखने मात्र से ही सारी शिक्षा मिल सकती है।

१. **सिर**=सत्य की प्राप्ति ही मनुष्य-जीवन का लक्ष्य है। सिर की स्थिरता से ही अस्तित्व है, अतः सिर ही अस्तित्व है।

२. **मुख**=ज्ञान—ज्ञान बंधन काटता है और ज्ञान की यह पहचान है।

३. **कण्ठ**=(गरदन) त्याग (दया)—त्याग से शान्ति मिलती है।

४. **हृदय**=प्रेम—प्रेम से मिलाप होता है। श्रद्धा के बिना न प्रेम हो सकता है न त्याग, न ही ज्ञान, विनय और श्रद्धा की प्राप्ति। विनय से मनुष्य देवता बन जाता है। प्रभु का भक्त विनय का पुतला होता है। वह प्रभु की पूजा को प्यार करता है। उसके स्वभाव में मिठास रहती है। क्रोध, अभिमान, ईर्ष्या, द्वेष आदि उसके पास तक नहीं फटकते। फल से लदी शाखा के समान वह सदैव नीचे ही झुकता रहता है।

५. **नाभि**=ब्रह्मचर्य्य—ब्रह्मचर्य्य तथा तप दोनों कार्य-कारणरूप होने से आवश्यक हैं।

६. **पांव**=तप—तप पर ही सब कुछ स्थिर है।

७. **खम्**=प्राण (ब्रह्म)—प्राण शरीर में सर्वत्र है, ब्रह्म भी सर्वत्र है।

## तप की व्याख्या

जैसे यह पार्थिव शरीर पैरों पर ठहरा हुआ है, ऐसी ही समस्त आध्यात्मिक **परोपकार** तथा शुभ कार्य **तप** पर आश्रित हैं। तप आध्यात्मिक पैर हैं। ब्रह्मचर्य्य और तप का ऐसा ही आपस में संबंध है जैसा प्रेम और त्याग तथा सत्य और ज्ञान का। ये एक-दूसरे के बिना जीवित नहीं रह सकते। ये दोनों अपनी-अपनी गाड़ी के पहियों के समान हैं।

**यम** में जो ब्रह्मचर्य्य का स्थान है वही **नियम** में तप का है। जिनमें ब्रह्मचर्य्य है, उन्हीं में तप धैर्य्य से होता है। जिनमें ब्रह्मचर्य नहीं, उन्हें हठ से तप करना पड़ता है, किन्तु उनका शरीर शिथिल और रोगी हो जाता है। वे आत्मिक उन्नति तो कर लेते हैं, किन्तु शारीरिक नहीं। बिना तप के काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार नहीं जीते जा सकते।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## जल से तप का सम्बन्ध

जल में तरंगें उठती हैं, फिर भी वह बहता ही रहता है, ऐसे ही चित्त की वृत्तियां हैं।

जल जब अग्नि के संसर्ग में आता है, तब तप जाता है। उस तपने से वह सूक्ष्म होकर आकाश में स्थान पाता है और बरसकर पहाड़ों पर जम जाता है। शुद्ध, निर्मल, शान्त और शीतल बर्फ बन जाता है। तब उसकी अवस्था ऐसी विनम्र हो जाती है कि चाहे सूर्य की कठोर गरमी उस पर पड़े, वह पिघल तो जायेगा किन्तु अपने शीतलपन को नहीं त्यागेगा और पिघलकर भी वह संसार का उपकार ही करेगा। जो भी उसे छुएगा, एक बार तो शीतल हो जायेगा। ऐसे ही जिस मनुष्य का चित्त (अन्तःकरण) तप के संसर्ग में आता है वह ऊपर ही ऊपर चढ़ता जाता है, अर्थात् इस पृथ्वीलोक से ऊपर हो जाता है। इस ऊपर की अवस्था का नाम ही आत्म-साक्षात् है। जो मनुष्य आत्म-साक्षात् कर लेता है उसकी वृत्तियां बर्फ के समान शीतल हो जाती हैं। फिर जो अन्य पुरुष भी इन ऐसी पवित्र-निर्मल आत्माओं का स्पर्श करते हैं, उनके दर्शन कर लेते हैं, वे भी एक बार तो शान्त और शीतल हो जाते हैं।

जल का यह गुण बहुत ही अनुकरणीय है कि जल जब बहता है तो उसके आगे यदि कोई खड्डा, छिद्र अथवा गढ़ा आ जाये, तो वह जब तक उसे भर न लेगा, आगे नहीं चलेगा, अतः साधक को यह गुण सदैव स्मरण रखना चाहिए।

नित्यप्रति आत्म-निरीक्षण का आशय भी यही होता है कि जो दोष आ जाये उसे पहले पश्चात्ताप से, फिर प्रार्थना से, और प्रतिज्ञा से निकाल देना चाहिए। तब आगे पग बढ़ाना चाहिए।

किसान लोग अपनी बोई हुई खेती में बार-बार गोड़ी करते हैं। बीच में घास उग आती है। यदि वे यह घास न निकालें तो उपज (पैदावार) कमज़ोर और थोड़ी हो। भूमि की सत्ता भी कमज़ोर हो जाती है। गोड़ी (निराई-गुड़ाई) करते रहने से उपज बहुत ही प्रबल होती है तथा भूमि भी ठीक रहती है। ऐसे ही आत्म-निरीक्षण करते रहने से मन पवित्र तथा सुदृढ़ हो जाता है और की हुई पूजा बहुत फल लाती है।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## व्यवहार-शुद्धि

इतने में ही वनी जी की दृष्टि एक बूढ़े आदमी पर पड़ी जो रो रहा था, बड़े करुणामय स्वर में। वनी जी ज़ोर से बोले—क्यों वृद्ध सज्जन! क्या पश्चात्ताप हो रहा है?

सबकी दृष्टि तत्काल उस वृद्ध सज्जन की ओर उठ गई और निस्तब्धता छा गई।

वृद्ध सज्जन—महाराज! मैं रो रहा था कि सारी आयु बीत गई, कई-कई घंटे सध्या जप भी किया, परन्तु शान्ति नहीं आई न आनन्द ही मिला।

वनी—क्या काम करते हो?

वृद्ध—अपना कार-व्यवहार करता हूँ। प्रभुकृपा से कोई कमी नहीं। व्यापार खूब चलता है।

वनी—प्यारे भाई! किसान जब शरीर से खूब कमाई कर लेता है तो उसे खूब भूख भी लगती है, फिर जो आहार साधारण से साधारण और एक प्रकार का ही उसके सामने आता है, वही उसे बड़ा सुस्वादु लगता है और उसे पुष्टि भी बड़ी देता है, या कोई अन्य व्यवहारी मनुष्य भी शरीर से व्यायाम कर लेता है, तो उसे भोजन का बड़ा आनन्द आता है और वही भोजन उस शरीर में बल तथा कांति पैदा करता है। किन्तु जो व्यायाम श्रम नहीं करते और नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन बना-बनाकर खाते हैं, फिर भी उनमें बल पैदा नहीं होता और वे शिकायत ही करते रहते हैं। ऐसे ही, जो मनुष्य पवित्रता से व्यवहार करता है और प्रभु की थोड़ी-सी पूजा भी कर लेता है तो वही उसके लिए आनन्द देने वाली तथा तेज पैदा करने वाली हो जाती है। किन्तु जिन मनुष्यों के व्यवहार पवित्र नहीं, उन्हें नाना प्रकार के पूजा, संन्ध्या, उपासना, प्रार्थना, यज्ञ, हवन, तप, व्रत आदि करने से भी आनन्द और रस नहीं मिलता, और वे सदा यही शिकायत करते रहते हैं कि हमारा मन शान्त नहीं होता, यद्यपि जप-तप बहुत करते हैं। सद्व्यवहार करने वाला मनुष्य यदि केवल प्रार्थना भी करता है तो उसी में उसे आनन्द आता है; या थोड़ा-सा जप भी करता है तो गदगद हो जाता है; यज्ञ-हवन करता है तो आनन्द से फूला

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


नहीं समाता। उसका चित्त तुरन्त समाहित हो जाता है और शान्ति-रस का पान करता है।

वृद्ध महाराज! क्या करें, व्यवहार में कई पाप हो जाते हैं। फिर व्यवहारी आदमी के लिए तो कठिन है, सन्ध्या से क्या लाभ?

वनी—मैं तो समझता हूं कि बिना पाप किये व्यवहार न चला सकता भी ईश्वर-विश्वास की कमी और बेसमझी है। अस्तु; यूं समझो कि उस स्नानालय में प्राय: मूत्र की दुर्गन्ध आती है जहां मनुष्य स्नानालय में मोरी के निकट लघुशंका करते रहते हैं, परन्तु उसी समय वहां जल नहीं डाल देते; वहां कुछ दिन पीछे ऐसी दुर्गन्ध आने लगती है कि चाहे फिर मशकों और मटकों में जल डालकर भी साफ करो, तब तक दुर्गन्ध नहीं जाती जब तक कि फिनाइल के पानी से उसे न धोया जाये। परन्तु, प्रतिदिन लघुशंका करते ही थोड़ा-सा जल डाल देने से भी दुर्गन्ध चली जाती है, या अंशमात्र रह जाती है और उसे भी कुछ दिन पीछे फिनाइल से धोना पड़ता है, ऐसे ही मन-रूपी स्नानालय में जहां दुर्गन्ध तथा अपवित्रता का ही व्यवहार है, यदि प्रतिदिन उसे सन्ध्या आदि जप से साफ न किया जाता रहे तो फिर उसकी सफाई के लिए भारी प्रायश्चित्त की आवश्यकता पड़ती है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

## छठी सीढ़ी

# आसन तथा प्राणायाम

### ध्यान-चक्र

बाबू-महाराज! अब मैंने यह धारणा कर ली है कि मैं बड़ी श्रद्धा तथा प्रेम के साथ नियमपूर्वक सन्ध्या किया करूंगा। बैठने की कोई खास विधि है या जैसे पाल्थी (चौकड़ी) मारकर साधारण रूप में बैठता हूं, वही पर्याप्त है?

वनी-बैठने-बैठने में भी भेद हैं एक बैठना तमोगुणी है, एक रजोगुणी; और आलस्य-प्रमाद से कभी गोड़े खड़े करके बैठ जाना, कभी एक टांग नीचे और एक गोड़ा खड़ा करके बैठना, यह तमोगुणी है।

आपने कभी सुन अथवा देखा हो, यज्ञोपवीत तथा वेदारम्भ संस्कार में जब शिष्य गुरु के सम्मुख बैठता है तो वह गायत्री का उपदेश लेने के लिए दो जानू (दोनों घुटने टेककर) बैठने की आज्ञा देता है। मुसलमान लोग भी अपने बड़ों के सामने दोजानूं टेककर ही बैठते हैं और नमाज़ भी इसी आसन से पढ़ते हैं। यही बैठना भी मान (अदब), श्रद्धा और सात्विक वृत्ति लाने वाला होता है। कारण, इसमें मेरुदण्ड सीधा रहता है। जिस आसन में मेरुदण्ड सीधा रहे वही सात्विक और पूजा में बैठने योग्य होगा।

बाबू-क्या दोजानू टेककर बैठना भी ठीक विधि है? मैं तो समझता था कि मुसलमान और अंग्रेज जो 'नील डाउन' (Kneel Down) होकर बैठते हैं, भूल करते हैं। फिर आसन कैसे लगाना चाहिए?

वनी-दो जानू बैठना भी श्रद्धा का चिह्न है। यजुर्वेद के अध्याय 19

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र 62 में **आच्या जान** आता है, अर्थात् पितृलोक (पूर्वज, बड़े) जब समीप आवें या सन्तान (छोटे) उनके पास जावें तो भूमि में घुटने टिकाकर नमस्कार करके उन्हें प्रसन्न करें।

सबसे अच्छा आसन ध्यान में सहायता देने वाला स्वस्तिक आसन या 'सुखासन' है।

## हाथ

1. हाथों को घुटनों पर रखें। पहली अंगुली अंगूठे की जड़ में लगी हो, और हाथ की पीठ घुटनों पर हो। पहली अंगुली ब्राह्मण अर्थात् विद्या की है, अंगूठा धर्म है, ब्राह्मण धर्म की शरण में रहे तभी उसको प्रभु-प्राप्ति होती है, और विद्या तथा धर्म दोनों मिले रहें तो संसार में शांति रहती है। इन भावों से जब हाथ की पीठ घुटनों पर होती है, तो उस स्थान का मेल होकर ओज पैदा होने में सहायता मिलती है।

2. संन्ध्या-समय घुटनों पर हाथ रखने का लाभ यह है कि यदि किसी को सन्धि रोग हो, पूरे हाथ (हथेली) से गोड़ा ढांप ले और अंगुलियों के नीचे रहने दे। हथेली में अग्नि होती है, उससे वह स्थान गरम होने पर दर्द को आराम रहता है।

3. यदि सुख-आसन लगे हुए, पैर टखने पर, दोनों हाथों के पंजों को एक-दूसरे से जोड़कर ऐसा रक्खा जाये कि निचला भाग अर्थात् कनिष्ठिका अंगुलियां टखनों से ऊपर आ जायें तो दोनों हाथों की शक्ति, प्रकाश तथा तम के नीचे के दोनों पैरों तथा टांगों के प्रकाश और तम से मिलकर एक ऐसी बिजली पैदा होती है जिससे ध्यान टिकने में बड़ी सहायता मिलती है और विचार शक्ति बढ़ती है।

4. यदि दाएं हाथ की हथेली दाएं घुटने पर, और बाएं हाथ की हथेली पैर के टखने पर हो, तो ध्यान खूब टिकता है। यदि बाएं हाथ की हथेली बाएं घुटने पर और दाएं ही टखने पर हो, तो भी यही लाभ है।

## आसन का फल

आसन का भी वही फल है, जो तप का है।

इस आसन का लेखक का अपना अनुभव है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


**द्वन्द्वानभिघातः**

अर्थात् 'तप से शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वों को जीतने की योग्यता प्राप्त होती है' और आसन की सिद्धि से ये सरदी-गरमी आदि द्वन्द्व सताने नहीं पाते।

सन्ध्या में जितनी क्रियाएं करने योग्य थीं वे मैंने आपको बतला दीं; अब सन्ध्या-मन्त्रों के शब्द-शब्द के अर्थ सन्ध्या पुस्तकों में देख ले और वहां से याद कर लें। ऋषि दयानन्द महाराजकृत सन्ध्या अर्थसहित अवश्य देखें। कई पूज्य महानुभावों ने बड़े परिश्रम और बड़ी खोज तथा भक्ति और श्रद्धा से पूर्ण इस सन्ध्या के मन्त्रों की आध्यात्मिक रूप में व्याख्या की है। वे एक से एक अपनी-अपनी जगह बढ़कर हैं; जहां उन्होंने मन्त्रों के आध्यात्मिक तत्व बतलाये हैं, शब्दार्थ करने में भी बड़ी विशेष विद्वत्ता प्रकट की है; अतः आप में से जिसे भी आध्यात्मिक उन्नति की साधना का (शौक) हो, उसे वह अवश्यमेव पढ़नी चाहिए। यदि मैं आपको कुछ बतलाऊं भी, तो उनके ही लिखे अर्थ बता सकूंगा। फिर आपको इसमें वह रस तथा आनन्द भी नहीं आएगा, जो स्वयं उन पुस्तकों में से वही पूर्ण शब्द पढ़कर आप प्राप्त कर सकेंगे। फिर जो व्याख्या जिनके मन को रुचे (यह अपनी-अपनी प्रकृति पर निर्भर है) वही याद करके धारण कर लो।

## ध्यान-स्थान

युवक—महाराज! यह तो बतला दीजिये कि सन्ध्या के समय ध्यान कहां रखना चाहिए?

वनी—सन्ध्या को तो मैं कह नहीं सकता कि कहां किस स्थान पर ध्यान रखना चाहिए, केवल इतना कह सकता हूं कि आत्मनिरीक्षण और अन्तःकरण की शुद्धि होने पर ही उपासना होती है। उनके वही स्थान हैं, जो चक्रों के हैं, अर्थात् नाभि, हृदय, कण्ठ, नासिका और अग्रभाग, त्रिकुटि आदि। साधारणतया तो सन्ध्या के शब्दों और अर्थों में ही ध्यान रखना चाहिए; इससे मन फिर अन्य कहीं नहीं जाता। प्राणायाम में भी इन्हीं चक्रों में ध्यान रखा जाता है—

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


| 'ओं भूः' | 'ओं भुवः' | 'ओं स्वः' |
|---|---|---|
| सहस्त्रदल | आज्ञाचक्र | विशुद्धिचक्र |
| सिर, ब्रह्मरन्ध्र | त्रिकुटि | कण्ठ |
| 'ओं महः | 'ओं जनः' | 'ओं तपः' |
| अनाहत चक्र | स्वाधिष्ठान चक्र | मूलाधार चक्र |
| हृदय | नाभिस्थान | गुदास्थान |

ये नाम भी प्रभु के भी है और शरीर में चक्रों के भी। चक्रों का जैसा नाम है वैसा ही गुण भी है। यह योग का विषय है। प्राणायाम के लाभ इत्यादि भी उधर ही समझने चाहिए।

युवक–फिर भी किसी चीज में तो ध्यान टिकाना ही पड़ेगा। इससे पंडित जी की मूर्ति वाली बात तो सिद्ध हो गई।

वनी–बेटा! यही भूल है। वे लोग मूर्ति को मन टिकाने का साधन नहीं बनाते, कहते अवश्य हैं। वे तो मूर्ति को परमेश्वर मानकर जपते हैं, धूप-दीप जलाते हैं, आरती उतारते हैं, मस्तक टेकते हैं, हाथ जोड़ते हैं, प्रार्थना करते हैं, मुरादें मांगते हैं और रो भी पड़ते हैं।

युवक–यदि कोई परमेश्वर न मानकर और मूर्ति को मूर्ति मानकर ही उसमें ध्यान के लिए मन टिकावे, तो?

वनी–फिर भी ठीक नहीं। मूर्ति पर ध्यान जमाने से दृष्टि बाहर रहेगी, आन्तरिक शक्ति नहीं बढ़ेगी। मूर्ति दूरी (फासले) पर है, अतः ध्यान भी दूरी (फासले) का ही किया जा सकेगा।

अब तुम नियम समझो। इन स्थानों पर ध्यान इसलिए टिकाया जाता है कि वहां सारे प्राण केन्द्रित कर दिये जायें। जहां प्राण जाता है वहां मन भी जाता है, और जहां मन जाता है वहां ही इन्द्रियां भी जाती हैं। समस्त शरीर की शक्तियों को एक स्थान पर केन्द्रित कर देने से ही प्राण में वेग होता है और इससे वे चक्र खुल जाते हैं और प्रभु की विचित्र लीला के रहस्य गुप्त रूप से ज्ञात होने लगते हैं, जिससे प्रभु की अद्भुत माया का भान होकर अगाध श्रद्धा और प्रेम भी बढ़ते जाते हैं, तथा अन्तःकरण भी शुद्ध और विशाल होता जाता है, परन्तु प्रभु के दर्शन नहीं होते।

देखो, जब बच्चा उदास हो और तुम उसे हंसाना चाहो तो उसकी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


बगल में गुदगुदी करते हो, किसी और जगह क्यों नहीं करते? इसलिए कि यह विशेष स्थान है। वैसे ही हर कोई अपने बच्चे या किसी प्रियजन के मुख को ही चूमता है। अश्लील प्रकृति के पुरुषों को कामोत्तेजक (इश्किया) राग सुनने मात्र से ही उत्तेजना हो जाती है। ऐसे ही इन स्थानों पर प्राण का संचार करने से भक्ति तथा ज्ञान की तरंगें उत्पन्न होती हैं। जब कोई नाभि पर ध्यान करता है, तो वह स्पष्ट कहता है कि मैं नाभि पर ध्यान रखता हूं, ईश्वर पर नहीं।

## प्राणायाम क्यों किया जाता है?

संक्षिप्त शब्दों में इसका उत्तर यह है कि प्रत्येक मनुष्य अन्दर और बाहर से घिरा हुआ है। बाहर तो विषयों से और अन्दर वासनाओं से। वह दोनों ओर से तंग है। जब प्राणायाम करता है तो दोनों मार्ग तत्काल रुक जाते हैं। जितने भी शुभ-अशुभ विचार हैं, वे आकाश से (जो समस्त प्राणियों की भावनाओं को एकत्रित रखता है) वायु द्वारा फैलते हैं, और प्राणों द्वारा मनुष्य की इच्छा न होते हुए उसके अन्दर प्रवेश करते हैं और अन्दर की तारों को छूते हैं, अर्थात् शुभ विचार शुभ मनुष्य में और अशुभ विचार अशुभ मनुष्य में प्रवेश करते हैं। इस प्रकार वे हमारे अन्दर अच्छी और बुरी वृत्तियां वासनाओं के रूप में जागृत हो जाती हैं। प्राणायाम करने वाले मनुष्य प्राणायाम के समय तो अन्दर-बाहर दोनों रोक लेते हैं, किन्तु अधिक अभ्यास से जब प्राणायाम सिद्ध हो जाता है तो वे इन नासिका में बैठे हुए ऋषि कश्यप और वसिष्ठ जिन विचारों को टिकाना होता है और उन्हें अन्दर आने देते हैं और दूसरों को बाहर ही रोक लेते हैं, और इससे जीवन पवित्र रहता है। अब निर्भर है साधक की अपनी इच्छा पर, भावना पर। चाहे वह व्यायाम के लिए करे जिससे शरीर शुद्ध रहे, चाहे अन्तःकरण के लिए कि मन शुद्ध हो जाये। यह उसकी अपनी लगन या इच्छा है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

# सातवीं सीढ़ी

# अघमर्षण मन्त्र

## भावना-वृत्ति

बाबू—महाराज! अब तनिक अघमर्षण मन्त्र का भाव भी समझा दीजिये!

वनी—**अघ** के अर्थ हैं पाप, **मर्षण** के अर्थ हैं **सहन करना, दूर करना, प्रक्षालन, धो डालना।**

बाबू—तो क्या इस मन्त्र से मनुष्य के पाप धुल जाते हैं?

वनी—हां! जब मनुष्य पिछले मन्त्रों के अनुसार आत्मनिरीक्षण करता है और अपने पाप और दोष उसके सामने आ जाते हैं, तो वह उनके लिए पश्चाताप और प्रायश्चित करता है। उन मन्त्रों से तो जल लेकर धारणा की थी, अब इस मन्त्र के कार्यरूप में आंसुओं के जल से अन्तःकरण की मैल धोई जाती है। जो मनुष्य अपने पाप को अनुभव करता है, उसके दण्ड से डरता है, और उसके लिए पश्चात्ताप करता है कि **ओहो! मैंने क्या किया!** जब उसकी आत्मा सच्चे हृदय से तड़पकर और व्याकुल होकर रोती हे, तो उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। आगे के लिए पाप करता ही नहीं। किन्तु ऐसे भी कई पाप हैं, जिनका संस्कार यदि रह गया तो उनका दण्ड अवश्य भुगतना पड़ता है, यह पश्चाताप और प्रायश्चित उस संस्कार को मिटा डालने के लिए होता है। यदि यह संस्कार न मिटा तो अवश्य दण्ड मिलेगा। जैसे एक मनुष्य ने रिश्वत ली, या छल से किसी को लूटा और वह माल उसके घर में है, या उसने पुत्रों को दे दिया है

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


और आप विरक्त हो गया है। अब उन पापों से उसे पश्चाताप होता है और ज़ोर-ज़ोर से रोता है। तो उसका यह रोना व्यर्थ है। चाहे वह आगे के लिए ऐसा कर्म न करे, फिर भी वह धन उसके पास है। वह उसे लौटाना नहीं चाहता। केवल रोने-धोने से कुछ न बनेगा। हां, यदि वह चुराया या अनुचित रूप से कमाया हुआ माल मालिकों को लौटा दे और फिर सच्चे हृदय से उस पाप के लिए रोए तो उसका वह संस्कार नहीं रहेगा।

पाप छिपाने से बढ़ता है और प्रकट कर देने से घटता है। जो लोग एकान्त में तो प्रभु के सामने अपने पाप प्रकट करके रोते हैं, परन्तु उन्हें लोगों के सामने प्रकट करने से लजाते हैं, तो समझो अभी उनमें अभिमान है। जो लोगों से छिपाता है और अपने आप को पापी नहीं मानता, धर्मात्मा प्रकट करता है, उसका पाप नहीं धुला और संस्कार रह गया। जैसे एक आदमी ने व्यभिचार किया और अब वह उसे त्याग करके रोता है। यदि सपने में भी उसे व्यभिचार का ध्यान नहीं आता, तो भी उसके किये हुए कुकर्म का दण्ड तो उसे अवश्य मिलेगा, परन्तु वह पहाड़ जैसा दुख भी उसे राई के समान दिखाई देगा और फिर नया पाप भी न होगा। दण्ड का प्रयोजन ही सुधार है। जब मनुष्य का अन्तःकरण सुधर गया तो जो दण्ड या दुःख उसे आगे मिलना था अब स्वयमेव उसने उस दण्ड को अपने ऊपर ले लिया।

दुःख आने पर मनुष्य घबराता है, रोता है, चिल्लाता है, बेहाल हो जाता है। अब भी यदि वह उसे अनुभव करके धाड़ें मार-मारकर रोता है, घबराता है, बेहाल हो जाता है, तो मानो वही दण्ड उसने अपने आप ही पा लिया।

**मर्षण** का अर्थ है **सहन करना**। वह मनुष्य, जो प्रभु का भक्त बन जाता है, इस मन्त्र द्वारा उस प्रभु की शक्ति का अनुभव करने लग जाता है जिससे उसका अभिमान टूट जाता है। अब अभिमानी मनुष्य यह जान जाये कि 'ओहो! वह प्रभु तो एक क्षण के अन्दर क्वेटा में भूचाल लाकर न हिलने वाले पर्वतों को अणु-अणु कर देता है, और बहते हुए दरियाओं को थल कर देता है, वह मुझसे सहस्रों गुणा अधिक साहूकारों ओर कोठी वालों को कंगाल कर सकता है। जर्मनी के कैसर जैसे बादशाहों को सिर

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


छिपाने का स्थान ढूंढने के लिए विवश कर देता है और पल में राजा को रंक बना देता है तो तुरन्त उस मनुष्य का अभिमान टूटकर चकनाचूर हो जाता है, उसका मस्तक श्रद्धा से प्रभु-चरणों में झुक जाता है, हृदय नम्र हो जाता है और प्रभु की शक्ति से भयभीत हो जाता है।

जो लोग अपने आपको बड़े दीन-हीन, अति-असमर्थ और भयभीत जानते हैं, जो समझते हैं कि हम महापापी हैं, हमारा क्या बनेगा, हम कभी नहीं उठ सकते, वे भी इस मन्त्र को पढ़कर और इस पर विचार करके यह ढारस पा जाते हैं कि प्रभु तो पल में राजा को रंक बना देता है। निजाम माशकी (भिश्ती) एक उपकार से ही राजा बनकर चाम के दाम चलाता है। नादिर चरवाहा था, उसे बादशाह बना देता है। अमरीका में एक मनुष्य जूते गांठता था, उसे वहां का प्रधान (मुख्याधिपति) बना देता है। जो प्रभु अपनी दया की वर्षा से उजाड़ को बस्ती बना देता है, एक से अनेक कर देता है, सूरदास जैसे पापी को और बाल्मीकि जैसे डाकू को भक्त और ऋषि-मुनि बना देता है, तो मैं क्यों साहस हारूं? वह तो पति-पावन है। रात के पीछे दिन लाता है, अमावस्या की घोर काली रात से पूर्णमासी का सुन्दर चन्द्रमा उदय कर दिखाता है। भगवान् कृष्ण ने गीता (18-66) में क्या ही सुन्दर ढारस देने वाले वचन कहे हैं-

**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरण व्रज!**
**अहंत्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥**

अर्थात् 'सब धर्मों के झगड़ों को छोड़कर एक मेरी शरण पकड़! शोक मत कर! मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूंगा।'

यह दैवी घोषणा पतित को उठाने के लिए कैसा बड़ा हथियार है!

बड़े से बड़े विद्वान् चकित रह जाते हैं जब वे नन्हें-से बीज से उगे हुए एक विशाल वृक्ष को देखते है। जो 50 से 100 फीट तक ऊंचा चला जाता है और 50 फीट तक नीचे धरती में जड़ें फैलाये हुए है; सैकड़ों शाखाएं, हजारों पत्ते, हजारों फल, और फिर एक-एक फल में सैकड़ों बीज! उस वृक्ष के तने मटियाले, पत्ते हरी, कोंपलें गुलाबी, फल लाल, दानें (बीज) पीले दिखाई देते हैं और पत्ते किस प्रकार एक ही सांचे में ढले हुए हैं, फिर जल जिसका गुण यह है कि वह नीचे बहता है, ऊपर नहीं,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


उससे सारे वृक्ष के, जिसकी मोटाई प्राय: 20 फीट है, पत्ते-पत्ते, डाल-डाल, तने-तने, सब जलदार बने हुए हैं, इतने नीचे पृथिवी से प्रभु वृक्ष के रोम-रोम में वह कैसे सिंचन करते हैं? सूर्यदेव की जो किरणें केवल धरती तक दिखाई पड़ती हैं, वे धरती की तह में घुसकर जल को किस प्रकार वृक्ष के रोम-राम तक पहुंचाती हैं?

किसान जिस दाने को बोता है, वह दाना धरती में जाकर एक सेकेंड में सहस्रों चक्कर काटता है। किसी वैज्ञानिक किसान को भी यह पता नहीं कि उस बीज का कौन सा भाग ऊपर फल बनाता है, और कौन सा नीचे जड़ें? प्रकृति ने इस रहस्य को देखकर बड़े से बड़ा विज्ञान (साइंस जानने वाला) भी सिर झुका देता है।

वह प्रभु पल में समस्त सृष्टि को प्रलय कर देता है और पल में फिर सृष्टि को वैसा का वैसा ही बना देता है। यह है भाव अघमर्षण मन्त्र का।

हमें अपने किये दुराचार के परिणाम का बुरा फल भोगने को सदैव उद्यत और अपना सुधार करने पर सदैव तुला रहना चाहिए। यही सच्चा प्रायश्चित है और यही चित्त शुद्धि का सर्वोत्तम उपाय है।

व्यक्ति तथा जनता में कौन-कौन से गुण और कौन-कौन से दोष होते हैं, इसका विचार मन के द्वारा सूक्ष्मतया परिभ्रमण करने से ही तो हो सकता है (मूढ़ से मूढ़ मनुष्य भी यदि अपना भला चाहे और ऐसे उसे कुछ समझ में न आये तो हस्पतालों में व्याकुल रोगियों को देखकर ही शिक्षा ले ले)।

गरमी की ऋतु है। दिन भर लू चलती है। सन्ध्या हुई कि तत्काल हवा बन्द हो गई। चारों ओर नाना प्रकार के वृक्ष हैं—आम, पीपल, बड़, कीकर, खजूर, शीशम, परन्तु मजाल नहीं कि किसी पर कहीं एक पत्ता भी हिलता दिखाई दे जाये! सैकड़ों कोसों तक सब वृक्ष चुपचाप खड़े हैं और लोग **त्राहि माम् त्राहि माम्** कर रहे हैं। बतलाओ! इन जड़ वृक्षों को कौन यह आज्ञा देता है? कैसे सब एकदम हिलने बन्द हो जाते हैं?

बाबू—तो क्या मनुष्यों का मन इन मन्त्रों के जप और अर्थ-विचार से शीघ्र ही पवित्र हो जाता होगा?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वनी–भाई! यह कैसे कहा जा सकता है? इस मन पर तो जन्म-जन्मान्तर की मैल चढ़ी हुई है। संसार के प्रलोभनों से भी घिरा हुआ है। पूर्व कर्मों के पूर्व संस्कार भी प्रबल हैं। मन का अपना वेग भी कुछ कम नहीं। इन्द्रियां भी अपना-अपना ज़ोर रखती हैं। अतः मनुष्य न चाहता हुआ भी पाप की ओर घिसटता चला जाता है। गीता में अर्जुन ने भी भगवान् से यही प्रश्न किया था। देखो अध्याय 3, श्लोक 36–

**अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरित पूरुषः।**
**अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय! बलादिव नियोजितः॥**

अर्थात् हे वार्ष्णेय (कृष्ण)! न जाने वह कौन-सी शक्ति है, जिससे कि मनुष्य न चाहता हुआ भी विवश होकर पाप में प्रवृत्त हो जाता है?

जन्म-जन्मान्तर की तपस्या करने से और अति लगन लगाने से मैल धुल जाती है। देखो! जितनी गरमी अधिक हो, शरीर से मल (पसीना) अधिक निकलता है। जब शरद् ऋतु हो तो पसीना निकलता ही नहीं। ऐसे ही जो मनुष्य बहुत तप करता है उसके अन्दर की मैल निकल जाती है। जितने भी महापुरुष और पुनीत आत्माएं आपको दिखाई दे रही हैं, उनके जन्म-जन्मान्तर की तपस्या का फल है। रूमाल को तो हम सवेरे का शाम को और शाम का सवेरे को धो डालते हैं, कोई कष्ट नहीं होता; केवल पानी से परखाल लेते हैं। किन्तु चोला (कुरता) अधिक मैला हो जाये जिसे चार दिन से न धोया हो, वह तो फिर मुक्के खाता है और कितनी देर लगती है जब साफ होता है! और जो खद्दर की मोटी चादर एक सप्ताह न धोई जाये, उसे तो फिर सोटे की मार तले आना ही पड़ता है, तब कहीं मैल धुलती है। जो खेस दो-चार मास में धोया जाये, वह तो बिना धोबी के बिना खम्ब की अग्नि में पड़े और फाले (पटड़े) पर बार-बार लगातार धोबी की मार (छांट) खाए इतनी जल्दी साफ कैसे हो जायेगा? जब कपड़े की यह दशा है तो मनुष्य रूपी कपड़े (अन्तःकरण) पर जो जन्म-जन्मान्तर की मैल चढ़ी है, वह भी प्रभु (धोबी) की शरण पड़े बिना और घोर तप किये बिना कैसे जाएगी?

बार-बार विषय सामने आयेंगे। उनके विपरीत चलना पड़ेगा। मन को वश में रखना और इन्द्रियों को दमन करना पड़ेगा; विषय को, पाप

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


को और वासना को भगाना पड़ेगा', इसके लिए तो यह प्रत्याहार का काम देता है।

भीमसेन–महाराज! आपने कहा है कि विषय बार बार सामने आयेंगे उनके विपरीत चलना पड़ेगा, इसके लिए हम मन को कैसे समझाएं? वह आई हुई पाप-वृत्ति कैसे दूर भागे?

वनी–पाप-वृत्ति ऐसे सामने आया करती है जैसे चोर-डाकू संभल-संभलकर आता है। यदि घर वाला सावधान न हो और बल न रखता हो तो लूटा और पीटा जाता है, किन्तु यदि घरवाला तुरन्त अपना बल दिखलाये तो चोर-डाकू दुर्बल हो जाते हैं और घर वाले के बल की तुलना कर लेते हैं। यदि उसे अपने से अधिक चैतन्य पाते हैं तो तुरन्त भाग जाते हैं, नहीं तो सामने डटे रहते हैं। नितान्त यही दशा साधक के साथ पाप-वृत्ति के सामने हुआ करती है। अतः जब पापवृत्ति सामने आये तो साधक चौकस होकर कड़ककर बोले–

**अपेहि मनसस्पतेऽपक्राम परश्चर। परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः॥** (ऋ मं. 10, सू. 164, मं. 1)

अर्थात् 'हे (मनसस्पते) मन को पतित करने वाले कुविचारो, (अपेहि) दूर हो जाओ! (अपक्राम) दूर भागो! (परः चर) परे चले जाओ! (परः निर्ऋत्या) दूर के विनाश को (आचक्ष्व) देखो! (जीवितः मनः) जीवित मनुष्य का मन (बहुधा) बहुत सामर्थ्य से युक्त है।

या फिर यह मन्त्र बोलकर अपनी पाप-वृत्ति को हटावे–

**परोऽपेहि मनस्पाप, किमशस्तानि शंससि।**
**परेहि न त्वा कामये, वृक्षां वनानि सं चर, गृहेषु गोषु मे मनः।**
(अथर्व का. 6, सू. 45, मन्त्र 10)

अर्थात् 'हे (मनः पाप) मन के पाप (परः) दूर (अपेहि) हट जा! (किं) क्यों तू (अशस्तानि) बुरी बातें (शंससि) बनाता है? (परा इहि) हट जा! (न त्वा कामये) मैं तुमको नहीं चाहता, (वृक्षां वनानि) वनों, में वृक्षों में (संचर) फिरता रह। (मे मनः) मेरा मन (गृहेषु गोषु) घर में और गौर आदि पशुओं की पालना में है।' (देखो वेदामृत, पृष्ठ 38)

भीमसेन–पहले मन्त्र में जो मन से ऐसा कहें कि 'दूर के विनाश को

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


देखो', इसका आशय क्या है?

वनी–बेटा! उस बुरे विचार से भविष्य में होने वाली हानि का विचार करके यह कहें।

कई सज्जन–महाराज! यह तो हमारी समझ में नहीं आया। ऐसा विचार कैसे किया जावे?

वनी–भाइयो! तुम्हारी समझ में यह इसलिए नहीं आ रहा है कि तुमने अभी कोई साधना नहीं की। जब मनुष्य इस आध्यात्मिक विद्या का विद्यार्थी बनता है, तो वह साधनाएं करता है। उन साधनाओं और तप के प्रताप से उसके शीशे साफ होने लगते हैं। इन शीशों से वह देखता है। ये शीशे दो हैं–एक बुद्धि का, दूसरा मन का। बुद्धि का शीशा तो दूरबीन है (दूर की चीज को देखने वाला) और मन का शीशा खुर्दबीन (छोटी से छोटी चीज को देखने वाला), अत: साधक जब प्रत्येक कार्य को इन शीशों से देखता है, तो उसे एक छोटे से छोटा पाप भी मनरूपी लघुदर्शी यन्त्र से बड़ा भारी दिखाई देने लगता है। उस पाप की गति और बढ़ाने का अनुमान वह उसकी हलचल से लगाता है। फिर जब दूरदर्शी यन्त्र लगाकर उसे देखता है, तो उसका भयंकर रूप उसके सामने आ जाता है और वह सोचता है–

1. इस पाप का बदला पाने के लिए एक तो मुझे जन्म अवश्य लेना पड़ेगा।

2. इस पाप के कुसंस्कार से दूसरे जन्म में भी मुझे वैसा ही पाप फिर घेरेगा।

3. फिर प्रकटत: उस पाप के कारण से दण्डित हो जाऊंगा और मेरा जीवन कष्ट में फंस जायेगा।

4. मेरे माता-पिता यदि धनाढ्य हुए, सम्मानित हुए तो उनके धन-माल का सर्वनाश होगा, उनकी बड़ी बदनामी होगी और मेरे माथे पर कलंक का टीका रहेगा।

5. यदि मेरी आयु थोड़ी हुई तो माता-पिता के सामने ही भरी जवानी में मेरे मरने का उन्हें अति दुख होगा।

6. यदि मेरा जीवन उस जन्म में और भी भ्रष्ट तथा पतित हो गया, तो फिर मुझे अनेक जन्म लेने पड़ेंगे।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


7. यदि मेरे जन्म का वायुमण्डल अच्छा हुआ और मेरी आयु कम हुई तो मुझे यह खेद रहेगा कि मैं कुछ कमाई नहीं कर सका।

इस प्रकार साधक जब विचारपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करता है, तो उपासना से स्वच्छ किये हुए इस मनरूपी लघुदर्शी यन्त्र और ज्ञान से पवित्र किये हुए बुद्धिरूपी **दूरदर्शी यन्त्र** के प्रयोग से वह पाप से दूर और पुण्य के समीप रहकर अपने जीवन-पथ पर चलता जाता है और उन्नत होता जाता है।

इस (अघमर्षण) मन्त्र में प्रथम तो यह बात दर्शाई गई है कि–

**ओम् ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोध्यजायत**

अर्थात्–**ऋत** तथा **सत्य** प्रभु **तप** से प्रकट हुए, अतः ज्ञान और सत्य की प्राप्ति तप के बिना नहीं होगी। तप से जब अन्तःकरण पवित्र हो जाता है, तो उसमें ज्ञान तथा सत्य की झलक आने लगती है।

देवी–फिर **शन्नो देवी** और **गायत्री मन्त्र** इस मन्त्र के उपरान्त बोलने की आवश्यकता क्यों प्रतीत होती है?

वनी–जब मनुष्य अपने पापों को याद करता है और उसे अपना जीवन, अपनी आयु अकारथ गई दिखाई देती है, तो वह धाड़ें मार-मारकर रो पड़ता है। उसे बड़ा पश्चात्ताप होता है (रोने से पापों का मर्षण–प्रक्षालन–धोना होता है), इस रोने से कण्ठ रुद्ध हो जाता है, उसके नाक तथा मुख से मैल निकलने लगता है, तब आगे विचार करने, अपने आपको पवित्र और शान्त करने के लिए आचमन की आवश्यकता पड़ती है, जिससे कण्ठ खुल जावे और चित्त शान्त हो जावे। गायत्री द्वारा बुद्धि की पवित्रता और निर्मलता की प्रार्थना तथा प्रायश्चित्त भी हो जाता है।

ऋषि दयानन्द जी महाराज ने **पंच महायज्ञ विधि** में लिखा है कि मन में गायत्री आदि मन्त्रों के अर्थ-विचारपूर्वक परमेश्वर की स्तुति अर्थात् परमेश्वर के गुण और उपकार का ध्यान कर, पश्चात् प्रार्थना करें अर्थात् सब उत्तम कामों में ईश्वर का सहाय चाहें और सदा पश्चात्ताप करें कि मनुष्य-शरीर धारण करके हम लोगों से जगत् का उपकार कुछ नहीं बनता। जैसा कि ईश्वर ने सब पदार्थों की उत्पत्ति करके सब जगत् का उपकार किया है, वैसे ही हम लोग भी उनका उपकार करें, इस काम में परमेश्वर हमको सहाय करे जिससे हम लोग सबको सदा सुख देते रहें।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## दिशा का सम्बन्ध सन्ध्या से

बाबू–एक प्रश्न और रह गया, वह यह कि क्या सन्ध्या में दिशा का भी कोई विचार रखना चाहिए, और आसन यदि किसी पशु-चर्म का हो तो चमड़ा होने के कारण वह वर्जित तो नहीं?

वनी–मनुष्य का लक्ष्य है–

**असतो मा सद् गमय! तमसो मा ज्योतिर्गमय!!**
**मृत्योर्माऽमृतं गमयेति!!**

अर्थात् असत्य से सत्य की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर और मृत्यु से अमृत की ओर जाने का है तो प्रकाश को सामने लक्ष्य करना चाहिए। सूर्य स्वयं प्रकाशमान है, अतः जिस समय और जिधर सूर्य हो उसी ओर सूर्य-सन्मुख बैठना चाहिए, या ध्रुव उत्तर में है और वह प्रकाश की दिशा मानी जाती है।

## आसन किस चीज़ का हो?

1. आसन ऐसा होना चाहिए, जो मनुष्य को देर तक आसानी से बैठने में सहायता दे और रोग पैदा न करे, रोगनाशक हो। तृणमय आसन सब प्रकार की प्रकृति वालों के लिए बहुत लाभकारी है, रुई का गद्दा कफ प्रकृति वालों के लिए।

2. पशुओं में जो पालतू पशु हैं उनका चर्म नहीं होना चाहिए, और जंगली पशुओं में चीते और हिरन की खाल अच्छी समझी जाती है। हिरन कई प्रकार के हैं–लाल, गोरे, काले और चितकबरे आदि। काले हिरन की खाल बवासीर के लिए उपयोगी है, लाल गोरे मृग की रक्त-रोग के लिए और चितकबरे मृग की समभाव (मोतदिल, न गरम न ठंडी) है। कई पशु चन्द्रमा के गुणवाले हैं, कई सूर्य के गुणवाले और कई ऋतुओं के गुणवाले। यजुर्वेद के 24वें अध्याय में इन सबका वर्णन मिलता है।

चीते का चर्म बहुत गुणकारी है। यह हृदय को पुष्ट करता है और सुखदायक भी है। कई चर्म ऐसे भी हैं जिन पर सांप नहीं चढ़ सकता या वहां आता ही नहीं जहां ऐसा आसन पड़ा हो।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

# आठवीं सीढ़ी

# मनसा परिक्रमा

## सर्वरक्षण पिता

### पंच ग्रंथी

भीमसेन–महाराज! पुस्तकें जो आपने कही है, सब हम पढ़ेंगे ही, फिर भी मनसा परिक्रमा के सम्बन्ध में तो कुछ समझा दें!

वनी–बेटा! सन्ध्या के मन्त्रों में **मनसा परिक्रमा** के मन्त्र बहुत कठिन हैं। तुम सब उपयुक्त पुस्तकों को, या अन्य भी इस विषय की पुस्तकें बनी हैं, पढ़ोगे तो इन मन्त्रों की व्याख्या सबको अपनी–अपनी ही मिलेगी, एक से दूसरी नहीं मिलेगी, मैं क्या समझाऊँ? मुझे तो यह बात अभी आप ही समझनेवाला है कि मन के द्वारा कैसे परिक्रमा होता है? **मनसा** का अर्थ है ज्ञान, अर्थात् 'ज्ञान द्वारा परिक्रमा करनी।'

इन मन्त्रों द्वारा अज्ञान–अन्धकार का नाश होना आरम्भ होगा। ज्यों–ज्यों इस परिक्रमा की दशा बदलेगी, त्यों–त्यों प्रकाश होगा। मन को एक एकाग्र करने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। पहले मन्त्रों में कर्म से पवित्रता प्राप्त की गई है, अब ज्ञान से मन प्रकाशित होगा। किन्तु जो मनुष्य मन को पहले जानता है, वह बेचारा परिक्रमा क्या कराएगा? दूसरे, जो साधक मन का जानने लग जाय, नियमपूर्वक आत्मनिरीक्षण और पश्चाताप आदि करता हो, अपने पापों तथा दोषों को दूर करने का यत्न भी करता हो सांसारिक कामों से अधिक नहीं या बराबर का भी नहीं, तो कुछ–न–कुछ समय तो अवश्य जानबूझकर प्रभु–भक्ति में तथा आत्मऽसुधार

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


के लिए भी देता हो, तो वह यह अभिलाषा करता है कि हे प्रभो! मुझे ज्ञान का प्रकाश मिले। परन्तु उसकी अपनी ही समय-समय पर उत्पन्न की हुई वासनाओं के प्रभाव से उसका मन बार-बार सांसारिक विषयों की ओर दौड़ता है, अतः फिर मन उखड़ जाता है और क्षण में इधर उधर हो जाता है। ये वासनाएँ मन की दशा ऐसी अशान्त कर देती हैं कि आसन नहीं टिकता और आँख भी उकता जाती है। मनुष्य के अन्दर इतनी वासना हैं कि गिनी ही नहीं जाती।

भीमसेन! महाराज! आप विषय, पाप, राग, द्वेष आदि का वर्णन तो पीछे कर चुके हैं, ये वासनाएँ क्या कुछ और होती हैं?

वनी—अरे! तुम्हें वासना का भी अभी ज्ञान नहीं? धन्य हो तुम तो! बड़े सरल स्वभाव के हो! बेटा, वासना बीज है और राग द्वेष जड़े हैं, सत्, रज, तम तने हैं और पाँच उस तने की शाखाएँ हैं—काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार। फिर एक-एक शाखा में बीसियों उपशाखाएँ, सहस्त्रों पत्ते, सैकड़ों फल हैं। फिर एक-एक फल में सैकड़ों बीज हैं। अब यदि कोई यह चाहे कि बीज का नाश कर दूँ तो वह हो नहीं सकता। बीज तो जड़ों में बदल गया है! यदि कोई जड़ें काट दे तो शाखाओं-पत्तों-फलों आदि सहित वृक्ष सूखकर गिर जाएगा। किन्तु यदि जड़ें विद्यमान हैं तो वह पत्तों को चाहे झाड़ता रहे, कच्चे ही फलों को तोड़ता रहे, शाखाओं को काटता रहे, वे तो फिर-फिर उग आएँगी। इसीलिए तो तपस्या करते हुए साधकों को कई वर्ष शान्ति से बीत जाते हैं, किन्तु फिर वही पाप का संस्कार जागकर उनको गिरा देता है।

इसका कारण यही है कि निस्संदेह उन्होंने पापों का त्याग तो कर दिया, विषय-विकार भी छोड़ दिये, शुभ कर्मों में भी प्रवृत्त हो गए, किन्तु जड़ें अभी दबी पड़ी थीं। जब उन्होंने धीरे-धीरे पुष्टि पाई, तब फिर शाखाओं और पत्तों आदि के रूप में सामने आ गईं। अतः इन मन्त्रों में उस जड़, अर्थात् द्वेष से दूर करने का उपदेश है। यह नहीं कि उस द्वेष को दूर नहीं कर सकते हैं। इच्छा और द्वेष तो मन के विकार हैं। द्वेष क्यों पैदा होता है? काम के कारण, क्रोध से, लोभवश, मोहवश और अहंकार से।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हाँ इन्हें दूर करना महाकठिन है। इसलिए साधक प्रभु की शरण लेता है। अपने द्वेष को बदल लेने के अभिमानी भावों को प्रभु के समर्पण कर देता है कि वह इस द्वेष को प्रेम में बदल दे। जो हमसे द्वेष, करता है यथा जिससे हम द्वेष करते हैं, उस द्वेष के विष को मथना पड़ता है, तब कहीं उससे अमृत– प्रेम निकलता है, बड़ी घोर तपस्या का काम है। एक वर्ष नहीं, दो वर्ष नहीं, जन्म-जन्मान्तर लग जाते हैं, फिर भी सब पापों का त्याग एकदम नहीं होता।

हाँ, यह तो हो सकता है कि एक मनुष्य हुक्का पीता है, शराब पीता है, मांस खाता है, रिश्वत लेता है और भी पाप करता है, वह सब एकदम त्याग दे।

सेनाओं को बड़ी संख्या में मार देना तो सम्भव है, परन्तु उनके मार डालने से भी रणभूमि में विजय प्राप्त नहीं होती, हां, यदि उनके सेनापति वश में आ जायें, उन्हें नज़रबन्द कर लिया जाय, तो सेना के मारने की भी आवश्यकता नहीं रहती, वे सब अपने-आप ही वश में आ जाते हैं।

पिछले मन्त्रों में तो इन इन्द्रियों के पापों की पड़ताल थी, उन्हें दूर करने का प्रयत्न था, परन्तु मन तो सूक्ष्म है, अतः सूक्ष्म पाप की जड़ों (राग-द्वेष) को सम्भालना है। उसके ये पाँच सरदार है, सेनापति हैं। एक-एक का एक मन्त्र है। छठा मन्त्र है इन सबको अपने वश में करके, इन सबका स्वामी (मालिक) बन जाने का। एक-एक मन्त्र में एक-एक सेनापति को प्रभु का नाम जुदा-जुदा है। जैसे गीता में भगवान् कृष्ण को कहीं मधुसूदन, कहीं हृषिकेष, कहीं केशव, कहीं जनार्दन, कहीं मोहन, कहीं कृष्ण, जैसा प्रकरण था वैसे ही नाम से पुकारा गया है, ऐसा ही यहां इन दिशाओं के अधिपति प्रभु को दिखाया गया है।

## पाँच ग्रन्थियां

प्रत्येक मनुष्य एक रस्से से बँधा हुआ है, जिसमें पाँच गांठ लगी हैं। मनुष्य तो इन गांठों को इसलिए नहीं खोल सकता कि वह स्वयं बँधा हुआ है। इसे वही खोलेगा, स्वतन्त्र करेगा, जो स्वयं-स्वतन्त्र है, मुक्त है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## 'प्राची दिक्: प्रथम ग्रन्थिः मोह-बन्धन

उन्नति की ओर मुख किये साधक चाहता है कि वह आगे (पूर्व) बढ़े, उन्नति करे, यह है पहली अवस्था। इसका वैदिक परिभाषा में नाम रक्खा गया है, 'प्राची दिक्, उन्नति की दिशा'। अब बन्धन की पहली गाँठ क्या है? –मोह! मोह ने ही इसके ज्ञान-नेत्र –बुद्धि–पर परदा डाला हुआ है और मन इससे बँधा हुआ है।

चूँकि बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं हो सकती और मनुष्य की प्रथम इच्छा ज्ञान-प्राप्ति के लिए ही हो और यही 'ज्ञान' अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश कर सकता है।

वैदिक परिभाषा में ज्ञान को अग्नि कहते हैं। चूँकि प्रभु ही बन्धन-रहित और मुक्त है, ज्ञानस्वरूप है, अतः ज्ञान-प्राप्ति के लिए उनकी ही शरण लेनी चाहिये।

'असतो रक्षिता' के अर्थ हैं बन्धन रहित, रक्षा करेनवाला; इसके दूसरे अर्थ हैं अन्धकार, कलंक पापमय, जो मनुष्य की पहली अवस्था है, अतः यह शब्द दोनों में ही काम देता है।

## मोह का स्वरूप

जितने भी बन्धन हैं, जितनी भी परतन्तत्रता, दासता, गुलामी, शोक, भय आदि हैं, वे सभी मोह के कारण हैं। मोह किसी एक पदार्थ का ही नहीं होता; पुत्र, स्त्री, परिवार, अपने शरीर, धन, सम्पत्ति, महल-माड़ी, का भी मोह होता है। सारांश यह कि जड़ और चैतन्य, दोनों का ही मोह होता है।

कैकेयी बड़ी धर्मात्मा थी। राम को भरत से अधिक प्रिय जानती थी, किन्तु मन्थरा के उकसाने पर, भरत का मोह आ ही गया, और राम-जैसे पुत्र को बनवास दिला दिया। धृतराष्ट्र बड़ा धर्मात्मा, ईमानदार और भतीजों का रक्षक रहा, किन्तु जब पुत्रों का मोह आया तो अन्याय पर कमर बाँध ली।

अतः मोह की अवस्था है तम ही। तम से ही सब पाप होते हैं, यही बन्धन तथा कलंक है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## यह बन्धन कैसे कटे?

चिरकाल तक इसका अभ्यास करते रहने तथा ऐसे आदित्य पुरुषों की सहायता तथा सत्संग से, जिन्हें अपने शरीर तक का भी मोह नहीं रहा, जिन्हें बदला लेने की जगह शत्रु को बचाने की चिन्ता रहती है, उनके ही कृपा-कटाक्ष, उपदेशों और शिक्षा से जब भी मनुष्य धीरे-धीरे परिमित मोह को अपने परिवार की सीमा से निकलकर जाति, देश, संसार और विश्व-कुटुम्ब में फैला देता है, तो वह प्रेम बन जाता है और उसका सब दोष मिट जाता है (ऋषि दयानन्द आदित्य थे। उनके जीवन से निर्मोह होने और संसार से प्रेम बढ़ाने की शिक्षा हमें प्राप्त होती है)।

## 'दक्षिणा दिक्:' दूसरी ग्रन्थिः लोभ-बन्धन

साधक का पग उन्नति के सीधे मार्ग पर है। अब इस मन की दूसरी अवस्था है तम तथा रज की। तम थोड़ा, और रज अधिक, यह बन्धन है लोभ का। मोह तो होता है जड़ और चैतन्य दोनों में, किन्तु लोभ होता है केवल जड़ पदार्थों में—राज, धन, सम्पत्ति, मान आदि का। इस दिशा का अधिपति इन्द्र है। 'इन्द्र' कहते हैं ऐश्वर्यवान् को।

लोभी मनुष्य अपनी लक्ष्य की पूर्ति के लिए पेचदार चालें, कूटनीतियाँ और पालिसियाँ सोचता है। इसे 'तिरश्चिराजी' कहा जाता है। इससे द्वेष-भाव पैदा होता है।

दुर्योधन ने लोभ के मारे कितनी कुचालें चलीं, जुए का जाल बिछाया, किस चालाकी से युधिष्ठिर को बुलवाया, लाख का घर बनवाया, बनवास दिया, अर्जुन को पतित करने के उपाय सोचे। ऐसे ही औरंगज़ेब ने भी क्या क्या न किया।

## यह बन्धन कैसे टूटे?

इस जाल से निकलने के लिए साधक यदि लगातार दिल से प्रयत्न करे, तो पितरों की शरण से लोभ (स्वार्थ) को परमार्थ में बदलकर सबको अपनी ही आत्मा समझने लगेगा। फिर वह किसको लूटेगा?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


'पितर' उसे कहते हैं, जो गृहस्थ के इन समस्त विषयों की उलझनों से निकलकर वनस्थ (वनवासी, विरक्त) हो गया है और अपने तपोवन जीवन तथा गृहस्थ आदि की समस्त बातों का अनुभव रखता है, अर्थात् जो वयोवृद्ध संसार का अनुभव शिक्षाओं से जब मनुष्य लोभ को जीत लेता है, तो उस समय लोभ से विपरीत जितने भी शुभ कर्म हैं, उनमें ही वह अपना जीवन व्यतीत करने लगता है।

अस्तु, दक्षिण दिशा का अर्थ है सीधा मार्ग, अथवा त्याग की अवस्था। दान-पुण्य, यज्ञादि की अवस्था का ही यह नाम है। दक्षिण का अर्थ दक्षिणा भी है। दक्षिणा कहते हैं यज्ञ, दान और त्याग करो।

## 'प्रतीची दिक्:' तीसरी ग्रन्थिः काम-बन्धन

अब तीसरा बन्धन है मोह के मुकाबले का काम। प्रतीची दिक् पीछे की ओर, अर्थात् शरीर के पिछले भाग में (पश्चिम की ओर) वीर्य का भाग है, अर्थात् कामजन्य कार्य का भाग है पीछे (रीढ़) की ओर।

मोह की अवस्था थी तम की, लोभ की अवस्था थी तम-रज की, अब यह तम भी रज में बदल गया। यह रज-प्रधान दिशा है।

इस दिशा में काम को 'पृदाकु' कहा है। 'पृदाकु' कहते हैं अजगर को, बड़े भारी विषैले सर्प को, काम भी एक बड़ा भारी अजगर है।

रावण-जैसे पंडित, विद्वान् श्रेष्ठ कुल के ब्रह्मण को जो वेदों का ज्ञाता था और ब्रह्मणग्रन्थ का रचयिता था, जो सदैव साईंस का धुरंधर विद्वान् था जिसे किसी बन्धु का मोह तो कहाँ, अपनी जान का, प्राण का भी मोह नहीं था, उसे भी इस कामरूपी अजगर ने जकड़ रक्खा था। इस काम ने ही उसे इस श्रेष्ठ पद से गिराकर उसका नाश कर दिया। काम उसे ऐसे खा गया, जैसे मनुष्य अन्न खाकर उसका नाश कर देता है।

इस 'पृदाकु' काम से भी वह प्रभु ही रक्षा करने वाला है।

इस दिशा का अधिपति 'वरूण'। 'वरूण' है जल का देवता और काम भी जल (वीर्य), इन्द्रिय की उत्तेजना से ही होता है।

'प्रतीची दिक्, का आध्यात्मिक अर्थ है-अन्दर की ओर होने की अवस्था-अन्तर्मुखी वृत्ति करना।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


काम का स्थान आँख है जबकि बहिर्मुख हो, और जब (आँख) अन्तर्मुख हो जाये तो 'अन्नं इषवः' हो जाती है–अन्नका अर्थ खा जानेवाली, अर्थात् अन्यायपूर्वक घात करने वालों को उनका अन्याय ऐसे मार देता है, जैसे अन्न नष्ट हो जाता है अतः अन्तर्मुखी–वृत्ति उस कामरूपी विषय को जीत लेती है अर्थात् खा जाती है।

'अन्न का अर्थ लज्जा भी है, लज्जा इस काम को जीतनेका प्रमुख (बड़ा) हथियार है। इस मन्त्र में एक तो ऐसा भान करना है कि जैसे अन्न खाया जाता है और नाश हो जाता है, दाने का मुख चक्की में रहता है, ऐसे ही कामी मनुष्य भी नष्ट हो जाता है।

'अन्न' का दूसरा अर्थ है संन्यासी। सब आश्रमों में श्रेष्ठ आश्रम संन्यास का है और समस्त खाद्य पदार्थ का राजा अन्न है।

'अन्न' का एक और भी अर्थ है–विषयों पर विजय पानेवाला–'अन्न'–संज्ञक पुरुष (सन्ध्या सुमन)।

## 'उदीची दिक्' चौथी ग्रन्थि : क्रोध–बन्धन

इनके उपरान्त चौथी अवस्था रज नाममात्र रह जाता है और सत् का उदय हुआ होता है–रज–सत् की अवस्था। 'उदीची' उत्तर की दिशा है–'उत्' के अर्थ ऊँची और 'उद्' के अर्थ श्रद्धा के भी हैं। यह श्रद्धा की दिशा उत्तर की दिशा है, जिसका स्वामी ('अधिपति') 'सोम' है। इसमें बन्धन है, 'स्वजो'–जो अपने–आप उत्पन्न हो, और वह साधक के अन्दर क्रोध। उसकी रक्षा करती है 'अशनि'–विद्युत–जो क्षण में ही अपना प्रभाव कर देती है। क्षणिक चमत्कार होता है, फिर गुम हो जाती है, परन्तु विद्युत रहती है–सब स्थान में व्यापक रूप से।

कोई मनुष्य तथा प्राणी ऐसा नहीं, जिसमें दया का गुण न हो। यह दया भी एक वाण है, विद्युत है, जो क्रोध को शांत करके सोमरूप बना देता है। जब साधक का स्वभाव दया का हो जाय तो वह सोमरूप बन जाता है–

**'दया धर्म का मूल है'**

'अशनि' योग की अवस्था है, जिसे स्वतः प्रकाश होता है–अपने

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


प्रकाश में ही वह काम करता है। क्रोध जीत लेने पर ही योगी को 'सोम'-अवस्था प्राप्त होती है। 'अशनिरित्रवः'-योगी का वाण है।

जो मनुष्य आत्मा की ओर गति करता है, अथवा उसे प्राप्त करता है, उसका नाम ही 'अशनि' है। (सन्ध्या सुमन)।

## 'ध्रुवा दिक्' : पाँचवीं ग्रन्थि-बन्धन

पाँचवीं अवस्था है सत् की। बन्धन है उसमें अहंकार। यह है सर्वव्यापी। जैसे 'ध्रुवा दिक् अर्थात् नीच की दिशा में दृढ़ रूप से 'विष्णु' सर्वव्यापक 'अधिपति' है, वैसे ही अहंकार पैर से लेकर चोटी तक व्यापक और मालिक बना हुआ है। जैसे विष्णु द्वारा समस्त जगत् का पालन-पोषण होता है, वैसे अहंकार से भी सारे पिण्ड (शरीर) का पालन-पोषण हो रहा है। जी हाँ, यदि अहंकार न रहे, तो पालन-पोषण भी न हो सके। इसलिए अहंकार को "विरुध" नीचे से ऊपर जाने वाली--उल्टाकर, नम्र कर दिया जावे। साधक में नम्रता का भाव आ जाये तो वह पूर्ण देव (देवता) बन जाए।

जिन ब्रह्मज्ञानियों ने नीचे प्रकृति से ऊपर की ओर ब्रह्म तक दर्शन का साधन किया, उन्हें 'विरुधा' कहा गया है।

'कल्माषग्रीवो' काली गरदन, अकड़ी हुई अहंकारयुक्त गरदन के लिए 'नम्रता' वाण है। ब्रह्मज्ञानियों का संग अहंकार नाश करने का वाण है। जब साधक ने अपने तपोमय जीवन से जन्म-जन्मांतर में या अनेक वर्षों में निरन्तर प्रयत्न करके मोह, लोभ, क्रोध अहंकार को अपने वशीभूत कर लिया, तो वह अन्तिम परकाष्ठा पर चक्रवर्ती राजा के समान पहुँच गया।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

## समझने के लिए कोष्ठक

### बन्धन की अवस्था तथा उनसे छुटकारा पाने के साधन

| अवस्था | दिक् (दिशा) | अधिपति | रक्षिता | बन्धन-ग्रन्थि | इषवः (बाण) | साधन |
|---|---|---|---|---|---|---|
| तम | 1. प्राची | अग्नि | असितः (अंधेरा) | 'मोह' | आदित्य ज्ञानी | मोह' ज्ञान से दूर होता है |
| तम-रज | 2. दक्षिणा | इन्द्र | तिरश्चिराजिः (टेढ़ा चलने वाला) | लोभ | पितर | 'लोभ' संसारी जीव अनुभवी पितरों के सत्संग, दान तथा यज्ञ से दूर होता है |
| रजप्रधान | 3. प्रतीची | वरूण | पृदाकू (विषैले हिंसक) | काम | अन्न | 'काम' कामजित्, सन्यासी, महात्मा जिन्होंने विषयों पर विजय पाई हो, तप से काम को जीता हो, उनके सत्संग से दूर होता है। |
| रज-सत् | 4. उदीची | सोम | स्वजः (स्वयं जन्मा) | क्रोध | अशनि | 'क्रोध' योग द्वारा, क्रोध को जीतकर ही योगी शान्ति प्राप्त करता है। |
| सत् | 5. ध्रुव | विष्णु | कल्माषग्रीवः (कलमुँहा) | अहंकार | वीरुध (लता-पेड़) | 'अहंकार मिटाते हैं सत्संग और ब्रह्मज्ञानी जिन्होंने नीचे प्रकृति से ऊपर तक पहुँचने की साधना की हो। |
| अन्तिम पराकाष्ठा | 6. ऊर्ध्वा | बृहस्पति | श्वित्रः (श्वेत कोढ़) | | वर्षा | प्रभु की पूर्ण दया |



CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## 'ऊर्ध्वादिक : छठी अवस्था : निबन्धन

यह छठी अवस्था 'ऊर्ध्वगति' की सबसे ऊँची अन्तिम पराकाष्ठा की अवस्था है। इस दिशा का अर्थात् 'ऊर्ध्वादिक् का अधिपति है जो बड़ों का बड़ा स्वामी है, ज्ञान का अधिष्ठाता है, वाणी का स्वामी है और विद्या का गुरु है। इस अवस्था का सब कलंक मिट जाता है। अब सर्वथा श्वेत सत्य ज्ञान। (स्वित्रो रक्षिता) ही रक्षक होता है। साधक निष्कलंक, निर्मल, निर्विकार हो जाता है। जैसे वर्षा आने पर सारी भूमि भीग जाती है और हरियावल दिखाई देने लगती है, जो सबके दिलों को सुहावनी और लुभावनी जान पड़ती है, ऐसे ही प्रभु का भक्त इस अवस्था को प्राप्त करके भक्ति-अमृत से भीग जाता है। वह अपने जीवन में ही जीवन-मुक्त, बेलाग और हरा भरा हो जाता है। अब वह विषयों का दास नहीं रहता, वरन् उनका स्वामी बन जाता है।

भीमसेन-महाराज! यह व्याख्या तो बड़ी विचित्र तथा हृदय-ग्राही है!

वनी-बेटा भीमसेन! वह दिव्य दृष्टि अब लोगों में नहीं रही जो प्राचीन आर्यों में वैदिक धर्म के कारण थी। वेदों की कविता दिव्य काव्य है। जिस महाप्रभु का काव्य है, उसको समझने का सूखे ज्ञानी और संकुचित-हृदय मनुष्य कैसे सौभाग्य प्राप्त कर सकते हैं? किसी बनमानस के हृदय पर उच्च कविता का क्या प्रभाव? पवित्र हृदय ही इन मन्त्रों का रस और आनन्द ले सकता है, अन्य नहीं। हाँ, तुम कहोगे कि फिर वेद का जनसाधारण के लिए तो कोई लाभ न हुआ। किन्तु ऐसा नहीं। प्रत्येक मनुष्य वेद से लाभ उठा सकता है, परन्तु अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार, और अवस्था के अनुसार। जैसे साधारण मनुष्य जल से प्यास बुझाना जानता है और अग्नि से सर्दी दूर करना, इससे अधिक नहीं, किन्तु साईंस वक्ता (वैज्ञानिक) जल तथा अग्नि से अनेक लाभ प्राप्त करके स्वयं भी मालामाल होते हैं और संसार का भी उपकार करते हैं, ऐसे ही महान् योगी और आत्मज्ञानी पुरुष भी उसी वेदमन्त्र का काव्य-दृष्टि से अवलोकन करके परमात्म तत्त्व के सिद्धान्तों को जान लेते हैं ('सन्ध्या-उपासना से')।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


श्रद्धापूर्वक आचरण करते हुए कोई समय ऐसा भी आ जाएगा, जब हमारी भी वैसी दृष्टि बन जाएगी। अतः बार-बार प्रयत्न करते रहना चाहिए। सिद्धि मिलने तक पुरुषार्थ करते रहना ही उचित है। अभी तो भूमिका का भी आरम्भकाल ही है। इन मन्त्रों में यही तो मर्म की बात है कि जब पूर्णतया द्वेष तथा अहंकार का त्याग हो जाएगा, विश्वप्रेम में वृत्ति बदल जाएगी सब आत्माएँ एक-समान दृष्टि देने लगेंगी, तब प्रभु के दिव्य काव्य को देख और सुनकर मनुष्य का रोम-रोम नाचने लग जाएगा, जैसे बादल के गरजने पर मोर बेसुध होकर नाचने लगता है।

भीमसेन–फिर इन पूरे छः मन्त्रों के प्रतिदिन विचार, ध्यान या पाठ का क्या लाभ? तब तो हमें जब एक पर सफलता हो जाये तो दूसरे को आरम्भ करना चाहिये?

वनी–बेटा! इसे एक अलंकार समझो। एक बड़ा सुन्दर महल है जिसकी छत नंगी है, फर्श बड़ा मनोहर है मोहरूपी संगमरमर का चमकदार, दीवारें अहंकार की है किन्तु उनकी नींव नहीं है, तीन उसमें कमरे हैं–एक कमरा विलास (ऐयाशी) का है जिसका द्वार 'काम' है, दूसरा कपट-सम्पत्ति का जिसका द्वार 'लोभ' है, तीसरा झगड़े फसाद का जिसका द्वार 'क्रोध' है; इस महल का नाम है 'नरक'। इस महल का स्वामी है पापी शाह। यदि सारे महल को शीघ्र ही गिराने की आवश्यकता अथवा इच्छा है, तो सब जगह ही लग जाना चाहिए। जो-जो भाग जैसे-जैसे गिरता जाएगा, वैसे-वैसे लाभ होता जाएगा। तुम देखते हो किसी में क्रोध है किन्तु मोह कम। ये सभी अवस्थाएँ पूर्व-संस्कार से है। हैं तो सब-की-सब, किन्तु न्यूनाधिक। अतः सभी के हटाने का प्रयत्न करना चाहिये। ईश्वर जाने कौन-सा समय जा जाय कि प्रभु दया करके बेड़ा पार लगा दें।

पीछे भी मन्त्रों में समझा आया हूँ, किन्तु फिर भी संक्षेप में यूँ समझो–

यह द्वेष और अभिमान मोह से पैदा होता है तथा लोभ, काम, क्रोध और अहंकार से भी। जब मोह से द्वेष पैदा होता है तो ज्ञान नहीं रहता, औसान (होश) उड़ जाते हैं। जब लोभ से द्वेष पैदा होता है तो ईमान नहीं

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


रहता, मनुष्य धर्म-पथ से गिर जाता है। जब काम से द्वेष पैदा होता है, तो श्रेष्ठता नष्ट होकर नीचता आ जाती है। जब क्रोध से द्वेष पैदा होता है तो मनुष्य की सौम्यता मारी जाती है, और जब अहंकार-द्वेष हो तब धीरता, गम्भीरता और दृढ़ता उड़ जाती है। इसीलिए इन छः मन्त्रों में द्वेष और अभिमान के नाश के लिए प्रभु से प्रार्थना की गई है कि-

**यो अस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।**

अर्थात् जो हमसे द्वेष करता है, जिससे हम द्वेष करते हैं, उस द्वेषभाव को आपकी विनाशक शक्ति के सामने रखते हैं।

●●●

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

# नवीं सीढ़ी

# उपस्थान मन्त्र

## प्रभु के सन्मुख

उपासना के चार मंत्र हैं। 'उपस्थान' के सीधे अर्थ हैं 'उप+स्थान'– 'समीप के स्थान पर बैठना'। यही मन्त्र ध्यान के हैं। जीव सदैव भूल में रहता है। प्रथम प्रकृति के क्षणिक आनन्द में निमग्न था। उसके अभ्यास से अपने-आपको भूला हुआ था। तब उसे आदित्य, पितर, संन्यासी, योगी और ब्रह्मज्ञानियों के उपदेश, सत्संग तथा सहवास से यह ज्ञान हो गया कि प्रकृति मेरे बन्धन के कारण न थी, मेरी विषय-वासना के संस्कार ही मुझे बांधे हुए थे। कारण, जब जीवात्मा सुषुप्ति-अवस्था में होता है, तो उस समय संसार, और संसार के भाग, मन, इन्द्रियाँ और उनकी विषय-शक्ति सभी साथ होती हैं, परन्तु संस्कार का तार बीच में टूट जाने से उसे कोई बन्धन नहीं होता। गरीबी-अमीरी, दुःख-सुख, मान-अपमान, हानि-लाभ, किसी भी प्रकार का उसपर प्रभाव नहीं डालते। मनसा परिक्रमा के छठे मन्त्र में जब साधक उस शुद्ध ज्ञान को प्राप्त करके बृहस्पति बन गया और मन श्वेत हो गया, निर्मल हो गया, तब वह जीवात्मा परमात्मा के पास जा पहुँचता है। जब कोई यात्री किसी पहाड़ी प्रान्त में पहुँचता है तो उसकी आँखों के सामने पहाड़-ही-पहाड़ पत्थर और धरती पर भी कंकड़-पत्थर ही दिखाई देते हैं, वह चारों ओर पहाड़ों से घिर जाता है, जब कोई यात्री जंगल में पहुँच जाता है तो इर्द गिर्द, आगे-पीछे भी जंगल-ही-जंगल देखता है तथा जंगली पशुओं के शब्द ही सुनता है; या, कोई यात्री जब

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


जहाज़ पर सवार होता है तो चारों ओर पानी-ही-पानी देखता है, या जब दरयाई इलाके में जाता है तो रेत-ही-रेत दिखाई देता है, ऐसे ही जब मन ज्ञानस्थल पर पहुँच जाता है तो उसके सामने ज्योतिर्मय लोक आ जाता है, उसे सब ओर ज्योति-ही-ज्योति घेरे रहती है और नाना प्रकार के प्रकाश, चमत्कार, गुप्त रहस्य उसके सामने अपने-आप खुलने लगते हैं।

उस समय भक्त यह अनुभव करने लगता है कि प्रकृति तमस् है किन्तु उत्कृष्ट है, मैं जीवात्मा उत्तर (ऊर्ध्वगति में) हूँ और परमात्मा जो ज्योतियों की ज्योति है, वह उत्तम है।

अब इस पहले मन्त्र में तो उसे प्रकृति, जीव, परमात्मा, अलग-अलग दिखाई देते हैं, किन्तु **'उद्वयन्तमसस्परि** वह प्रकृति से ऊपर होकर **'स्वः पश्यन्त उत्तरम्'** अपने-आप को देखते है; किन्तु **'देव देवत्रा सूर्यमगन्मज्योतिरुत्तमम'** तो प्रभु की उत्तम ज्योति अपनी ज्योति से मिलाकर परम आनन्द लेना चाहता है। अतः **'उदुत्यं जात वेदसम्'** उसे उस जातवेद उत्तम ज्योति प्रभु की ओर **'देवं बहन्ति केत्तवः'** संसार के समस्त देव संकेत करते दिखाई देते हैं **'विश्वायसूर्यम्'** विश्व के सूर्य का **'दृशे'** दर्शन करने के लिए। पहले चेतन ज्ञानियों से उपदेश पाकर कह रहा है—विश्व के सूर्य की ओर चले चलो जैसे चौराहे के तख्ते (बोर्ड) हाथ की मूर्ति बनाए यात्री को बतलाते रहते हैं 'लाहौर इधर को, 'मुलतान इधर को'—**'उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः दशे विश्वाय सूर्य्यम्।**

ज्यों-ज्यों साधक देखता है, उसे प्रभु की लीला विचित्र ज्ञात होती है और वह उनमें मग्न हो जाता है, तो 'चित्रं' प्रभु की चित्र-विचित्र लीला 'देवानां' उस भक्त के हृदय में, 'अनीकं' बड़े बल से **'उदगात्'** फैल जाती है और उसे समस्त देवों की पथ-प्रदर्शिका **'चक्षु'** आँख **'मित्रस्य वरुणस्याग्नेः'** मित्र वरूण-अग्नि जो **'आप्रा-द्यावा पृथिवी अन्तरिक्ष'** तीनों लोक द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथिवी में व्याप्त है, सूर्य आत्मा **जगतस्तस्थुषश्च'** वह जड़-जंगम-स्थावर का सूर्य ज्योतिस्वरूप है। अब इस लीला से जब उसे आनन्द आता है, और प्रभु को ही वह केवल अपना समझता है तो बलिहार होकर कह देता है 'स्वः हा—स्वाहा—अपना-आपको उस प्रभु के चरणों में अर्पण कर देता है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


प्रभु के ऐसे उपासक दो प्रकार के मस्ताने होते हैं। एक तो बाहर की विचित्र रचना को देखकर, पत्ते-पत्ते में उस प्रभु की सत्ता (कारीगरी) पर मोहित होकर मुग्ध हो जाते हैं। ये तो एक ब्रह्म कहने वाले बन जाते हैं।

दूसरे, अपने शरीर के अन्दर ही शरीर की विचित्र रचना और विधान देखकर अपने में उन्मत्त हो जाते हैं। बाहर की समस्त लीलाएँ उन्हें अपने-आप ही होती जान पड़ती हैं। ये अपने में ही सबको देखने वाले होते हैं और सबको उसी परमात्मा में देखते हैं। वे अपनी आत्मा के तुल्य ही सबको जानते हैं। ये अपने-आपको भूलकर **'यह ब्रह्म अस्मि'** कहने वाले बन जाते हैं।

भीमसेन–महाराज! कृपा करके थोड़ा-सा उदाहरण देकर समझा दें कि बाह्य विचित्र रचना पर मोहित होने वाले क्या दृष्य देखते हैं और अन्दर शरीर में देखने वाले क्या?

## बाह्य की विचित्र लीला

वनी–(1) प्राणी भी असंख्यात हैं और योनियाँ भी असंख्य। क्या विचित्रता है कि एक का रूप दूसरे से नहीं मिलता। जब से सृष्टि चली आती है, एक अरब 97 करोड़ 29 लाख वर्ष से भी ऊपर हो गए, परन्तु आज तक एक भी सूरत दूसरे से नहीं मिली। प्रभु कैसे और किस बुद्धि से ये बनाते हैं?

(2) प्रभु ने धरती, बनाई परन्तु उसके खण्ड-खण्ड का प्रभाव भिन्न-भिन्न है। कहीं सोना, कहीं चाँदी, कहीं लोहा, कहीं पारा, कहीं सोडा, कहीं खार होती है। कोई धरती की, कोई अन्न कीं, कोई बाग की, कोई चाय-काफी की, कोई पथरीली, कोई मैदानी है। असंख्य कानें (खानें) हैं, कोई लवण (नून), कोई नीलम, कोई हीरे पैदा करती है, कहीं नारियल उगते हैं और कहीं आम।

(3) जल हैं तो उनका प्रभाव अलग-अलग! कोई मीठा, कोई तेलिया; किसी से अतिसार (दस्त), किसी से विबन्ध (कब्ज), किसी से ज्वर, किसी से स्वास्थ्य-लाभ होता है।

(4) रंग बनाये तो नाम एक, किन्तु रूप एक-समान नहीं। पीले रंग को ही लो! आम, सन्तरा, नींबू, गलगल, जामन, आँवला, आलूबुखारा,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


किसी का स्वाद भी दूसरे से नहीं मिलता।

(5) करेला कड़वा, बीज फीका, नीम कड़वी, निम्बोली मीठी, नींबू खट्टा, बीज कड़वा, पीलू मीठे, बीज कड़वा।

(6) सन्तरे की बनावट तथा उत्पत्ति देखो! बीज श्वेत, डंडी मटियाली, पत्ते हरे, फूल श्वेत और मनोहर सुगन्धवाले, छिलका पीला, फाँकें गुलाबी, एक-एक सन्तरे में बारह डलियाँ और एक-एक फाँक में तीन-तीन बीज, एक-एक सन्तरे में 36 बीज।

(7) अनार की गुँधावट देखो, कैसी बँधी हुई है! एक दो को निकाल लो तो बड़े-से-बड़ा कारीगर वैज्ञानिक भी उसे फिर वहाँ नहीं जमा सकता।

(8) गुलाब के फूल में सुगन्धि, परन्तु पत्ते, डंडी और बज में कुछ भी नहीं।

(9) माता के गर्भ में बालक कैसे रहता है और कैसे बढ़ता है? कैसे उसका पालन-पोषण होता है? फिर किस प्रकार गर्भ-गुफा से इतना बड़ा बालक निकल आता है? बलिहार! बलिहार!

(10) मकड़ी अपने ही अन्दर से कैसा महीन तार निकालकर किस प्रकार जाल बनाती है।

(11) शरीर की आन्तरिक लीला भी प्रभु ने कैसी विचित्र रची है! मनुष्य एक पदार्थ को भी अनेक नहीं बना सकता, किन्तु प्रभु की लीला देखो! मनुष्य अन्न खाता है तो अन्दर जाकर उस अन्न का क्या-क्या बन जाता है। फिर रंग भिन्न-भिन्न। हड्डी, पीप, मांस, रुधिर, मज्जा, चर्बी, खाल, नख (नाखून), बाल, वीर्य थूक, खँखार आदि।

## मनुष्य-शरीर में प्रभु की विचित्र लीला

### (एक सियालकोटी महाशय की पुस्तक से उद्धृत)

कार्यालय फौंडरी—आमाशय (मेदा) अपने सम्बन्धित यन्त्रों-सहित एक ऐसा विचित्र कार्यालय है जिसमें भाँति-भाँति की धातें (धातुएँ) ढलती हैं। भट्टी में अग्नि प्रदीप्त करने के लिए धौंकनी की भी आवश्यकता है। हमारे दोनों फेफड़े दो ऐसी स्थाई धौंकनियाँ हैं जो दिन-रात अग्नि प्रदीप्त करने के लिए निरन्तर फूँक लगाने में व्यस्त रहती हैं।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**मलपात्र और मसाना**—यह दो नालें है जिनमें ढली हुई धातों का मैल तथा इंजन का अनावश्यक जल एकत्रित रहता है। साधारण कार्यालयों में ऐसा जल स्वयमेव बह-बहकर बाहर निकलता रहता है, किन्तु इसमें ऐसे जल और मैल (मल) का निकास कार्यालय के स्वामी की स्वीकृति और आज्ञा पर निर्भर है, इसमें भी प्रभु का एक रहस्य है। (अ) यदि मनुष्य-शरीर से मल-मूत्र का निकास मनुष्य की इच्छा के आधीन न होता, तो उसका शरीर, वस्त्र, बिछौना, लेटने-बैठने का स्थान सदैव गन्दा, दुर्गन्धियुक्त और घिनौना रहता। (आ) बड़े-बड़े विशाल भवनों में मलस्थान (पाखाना) प्रायः रहने के कमरों से दूर एक कोने में होता है और समय-समय पर साफ होता है। फिनाइल आदि से उसकी दुर्गन्ध दूर हो जाती है, वर्षा ऋतु में फिर भी दुर्गन्ध रहती है, किन्तु मनुष्य-शरीर में मल सदैव बना रहता है, फिर भी न तो शरीर के स्वामी को ही और न किसी आसपास वाले को ही उसके इस आन्तरिक मल की दुर्गन्ध आती है। इस प्रयोजन से प्रभु ने मोमी वस्त्र की एक 34-35 फीट लम्बी थैली बना रक्खी है जिसमें बड़ी दक्षता और चतुराई से इस मल को इस प्रकार लपेट रक्खा है कि वर्षों पड़ा रहे, परन्तु दुर्गन्ध बाहर न निकलने पावे। फिर आश्चर्य यह है कि एक फुट वर्गस्थान (आमाशय) में यह 35 फीट लम्बी ऐसी चतुराई से रक्खी है कि न बल ही पड़े और न पेच ही, और रक्खी भी जाय लपेटकर। मांसाहारी पशुओं के आमाशय में प्रायः न केवल कच्चा मांस ही वरन् पत्थर-जैसी कठोर हड्डियाँ भी इस आमाशय की अग्नि से गलकर पानी-सी पतली हो जाती हैं, किन्तु यह आमाशय जो एक नरम सूक्ष्म मांस से बना हुआ है, उस पर पत्थरों के गलाने वाली इस अग्नि का रत्तीभर भी प्रभाव नही पड़ता।

**मूर्ति बनाने का कार्यालय**—इस कार्यालय से मिला हुआ ही एक दूसरा कार्यालय भी है जहाँ पत्थर काटने और मूर्ति बनाने का काम होता है। इस कार्यालय में पौने दो इंच लम्बे कमरे में, जिसे बच्चादानी कहते हैं (अ) बिना किसी कारीगर, यंत्र या शोर-गुल के, चुपचाप ही मनुष्यों तथा पशुओं के बच्चों की नाना रूप तथा आकृति की मूर्तियाँ बनती हैं। (आ) संसार में कोई भी प्राणी श्वास बिना जीवित नहीं रह सकता, परन्तु प्रभु की विचित्र कारीगरी यह है कि

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


गर्भ में बच्चा साँस लिये बिना भी महीनों जीवित रहता है।

**तारघर**—इसी अहाते में एक बड़ा शानदार तारघर है जिसमें सैकड़ों बिजली के तार लगे हुए हैं, जहाँ रात-दिन तार-समाचार बाहर से पहुँचते रहते हैं। उनके पाने के लिए पाँच तारबाबू और एक हैडक्लर्क है जो सबकी पाई हुई खबरें कार्यालय के स्वामी को पहुँचा देता है। यह तारघर शरीर का वह भाग है जिसे खोपड़ी कहते हैं। शरीर में सैंकड़ों पट्टे बिजली की तारें हैं। पाँच तारबाबू पाँचों ज्ञानेन्द्रियों और मस्तिष्क (बुद्धि) उनका मुख्याधिकारी है।

**फोटो के कैमरे**—उनके साथ ही एक बड़ा बढ़िया फोटोग्राफी (छायाचित्र) का कार्यालय है जिसमें दो कैमरे (चित्र ग्रहण के यंत्र) हैं। उनके शीशे का घेरा 1/2 इंच है और उसका व्यास (Diameter) 1/24 इंच, किन्तु इतने छोटे शीशों द्वारा भी बड़े से बड़े दरयाओं, पहाड़ों, नगरों, वरन् देश देशान्तरों के चित्र बड़ी सुन्दरता और सफाई के साथ खींचे जाते हैं और एक 6 इंच वर्ग-कमरे में एकत्रित कर दिये जाते हैं। फोटोग्राफी का कार्यालय भी मस्तिष्क (दिमाग) का ही एक भाग है। इसमें दो कैमरे दोनों आँखें हैं, दो शीशे हैं आँखों की दोनों पुतलियाँ। आँखों के डेलों को बाहरी चोट से सुरक्षित रखने के लिए उस सर्वज्ञ प्रभु ने उन्हें दो गहरे गढ़ों में रक्खा है, गई-धूल से बचने के लिए उनके आगे पलकों की चिकें लटका दी हैं और छेदों अर्थात् पपोटों के किवाड़ तथा परदे भी बना दिये हैं जिससे कार्यालय बंद हो जाने पर उन्हें नीचे गिराकर द्वार सर्वथा बंद कर दिया जाए।

**टेलीफोन और फोनोग्राफी**—इसी जगह एक और विशाल भवन खड़ा है जिसके दोनों ओर दो बड़े द्वार हैं। उसके एक भाग में टेलीफोन (मुख द्वारा स्थिर है ओर दूसरे फोनोग्राफी का काम जारी है। इसमें दो ही तवे (प्लेटें) सैकड़ों वर्षों तक सुई बदले बिना ही बड़ी सुन्दरता से काम देते रहते हैं। यह भवन भी खोपड़ी में ही है जिसके दो द्वार दो कान हैं और कानों के अन्दर वाले परदे दो तवे हैं।

**गायनालय**—इससे मिला हुआ एक और कार्यालय है जहाँ नाना प्रकार के वाद्य यंत्र (बाजे)—सारंगी, सितार, मृदंग, तबला, ताऊस, वीणा बाँसुरी और हारमोनियम बनते और बजते-बजाते रहते हैं। विचित्र बात यह

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


है कि इस कार्यालय में बनें हुए सब बाजे एक ही तार से बजते हैं और केवल एक ही चाबी सैकड़ों स्वर निकालने का काम कर देती है। यह कार्यायलय शरीर के उस भाग में है जिसे तालु, जिह्वा, कंठ (हलक) कहते हैं और वह एकमात्र तार वह है जिसे धमनी (शिरा, शाहरग) कहते हैं, और वह एक ही चाबी जिह्वा है।

**पिसाई का कार्यालय**–इस अहाते में एक आटा पीसने की मशीन (चक्की) या भारी जिन्दरा लगा हुआ है। जिन्दरा चलते समय ओखल में हाथ डालकर माल ऊपर-नीचे करने का काम पर एक चतुर अनुभवी मज़दूर लगा हुआ है जो जिन्दरा के धमाधम चलते समय ओखल में बड़ी सफाई के साथ माल फेरता रहता है, किन्तु क्या मजाल जो जिन्दरा हाथ को छू भी जाय! यह मशीन या जिन्दरा तालु, मुख, दोनों होठ, और दाँत हैं और मज़दूर जिह्वा है जो ग्रास चबाते समय ग्रास को दाँतों-तले ऊपर करते रहने में ही लगी रहती है।

**नहर तथा सिंचवन विभाग**–इनके अतिरिक्त यहाँ खेती-क्यारी का काम भी होता है, जिसके लिए नहर का एक बड़ा महकमा जारी है। इनमें छोटी-बड़ी सैकड़ों नहरें बहती हैं और देश के प्रत्येक भाग का सिंचन करती है, अर्थात् उक्त से भरी हुई सहस्त्रों रगें और नाड़ियां, असंख्य रोम अर्थात् शरीर पर के बाल, मानो नाना प्रकार की खेतियाँ हैं।

**निर्माण विभाग**–यह विभाग रात-दिन बनाव-बिगाड़ में लगा रहता है। सैकड़ों चोट और फट, जो बाहर शरीर पर लगते रहते हैं, वे बिना किसी चिकित्सा के अपने-आप स्वाभाविक रूप से ठीक होते रहते हैं।

**चिकित्सालय**–इसमें चिकित्सालय तथा चीरफाड़ का काम भी निरन्तर होता रहता है। सैकड़ों आन्तरिक रोग अपने-आप ही प्रकृति रूप से दूर होते रहते हैं और कई आन्तरिक क्षत (जख्म) बिना किसी चिकित्सा के अन्दर-ही-अन्दर भरते रहते हैं।

**घंटाघर**–इस महान् संसार और अन्दर नाना प्रकार के असंख्य कार्यालयों के प्रबन्ध को नियमपूर्वक रखने के लिए इसमें एक विशाल घंटाघर भी है, जिसकी मशीनरी बड़े नियमानुसार चौबीसों घंटे टिक-टिक की ध्वनि करती है और उसका नस-नाड़ी-प्रबन्ध है। इसकी सुई है नाड़ी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


(नब्ज) तथा उसकी धड़कन का शब्द टिक-टिक है। लटकन हृदय-यंत्र का लोथड़ा है। यह घड़ी समय बताने के साथ ही सर्दी-गर्मी का अनुमान बतानेवाले यन्त्र 'बेरोमीटर' का काम भी देती है।

**सन्तरी**—बड़े-बड़े कार्यालयों के दरवाजों पर सन्तरी (सिपाही) भी कन्धे पर बन्दूक रक्खे इधर-उधर, दम लिये बिना टहलता रहता है। ठीक इसी प्रकार प्राणवायु यहाँ पहरेदार है जो कभी रुके बिना बराबर अन्दर आती और बाहर जाती रहती है। यही उसका पहरा है। यह कभी किसी को उल्टे मार्ग पर चलकर आगे बढ़ने नहीं देती। उदाहरणरूप से यदि कोई अन्नकण अथवा जलबिन्दु अपना ठीक मार्ग छोड़कर आमाशय में जाने की जगह फेफड़ों की ओर जाने लगे तो यह उसे धक्का देकर बाहर निकाल देती है जिसे 'दुथडु लगना' बोलते हैं।

## एक और विचित्रता

**शरीर का सुडौलपन**—प्रभु की प्रत्येक रचना ज्ञानसहित है। शरीर के प्रत्येक भाग मे सुडौलपन (तनासुब) पाया जाता है। हाथ के अंगूठे की मोटाई से दुगुनी कलाई की मोटाई होती है और कलाई की मोटाई से दुगुनी गले की गोलाई होती है हाथ की मुट्ठी की गोलाई के बराबर पैर की लम्बाई होती है। इसी प्रकार सारी इन्द्रियां और सब स्थान एक विशेष नाप के अनुमान में बनाए गए हैं।

अब भक्त यह विचित्रता देखकर भगवान् के आनन्दस्वरूप में निमग्न हैं। ध्यान में मग्न होने के कारण उसके अभ्यास से अपने-आपको भूला हुआ है। किन्तु जब तक उसका ध्यान शरीर में है, तब तक स्थाई नहीं हो सकता, अतः जब भी वह इस डुबकी से ऊपर उठता है उसकी यह इच्छा होती है कि मैं अब इस आनन्द को पाकर **'तत् चक्षुः'** जिस चक्षु का पिछले मन्त्र में भान करके वह मग्न हो गया था, जो **'देव हितम्'** देवों का हितकारी है और **'पुरस्तात् शुक्रमच्चरत्,** अर्थात् पहले ही तेज का पुंज है, उसके **'पश्येम् शरदः शतम्'** सौ वर्ष तक दर्शन करता रहूँ। किन्तु दर्शन तभी कर सकता है जब वह जीता हो अतः, कहता है **'जीवेम् शरदःशतम्'**—मैं सौ वर्ष तक जीता भी रहूँ। अब जिस

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वाणी से ज्ञान प्राप्त किया और प्रभु के अमृत-उपदेश अन्तरात्मा में सुने, उनके लिए भी इच्छा करता हुआ कहता है **'शृणुयाम शरदः शतम्'** कि मैं उस वाणी को भी सौ वर्ष तक सुनता रहूँ। साथ ही अब वह उपकारभाव, जो सन्ध्या के आरम्भ में चोटी की गाँठ लगाते सुमार्ग पर लगाओ और **'धियो या नः प्रचोदयात्'** अर्थात् हमारी बुद्धियों को सुमार्ग पर लगाओ और **'शन्नोरभि स्त्रवन्तु नः'** हम सब पर चारों ओर से सुख की वर्षा करो तथा **'उद्वयं तमसस्परि'** हम सब प्रकृति से ऊपर हो जावें, इन समस्त भावनाओं के साथ-ही-साथ यह भावना भी उत्पन्न होती है कि **'प्रब्रवाम शरदः शतम्'** हम सौ वर्ष तक प्रभु के इन आनन्द-रस का उपदेश भी करते रहें, और फिर अन्त में यह कहा है कि 'हे प्रभो! अब तो हम तेरे आश्रित निर्भर हो चुके हैं, बड़ी कठिनाई से यह उत्तम अवस्था प्राप्त हुई है, अतः हे प्रभो! **'अदीनाः स्याम शरदः शतम्'**—सौ वर्ष तक हम किसी के दीन भी न हों, इससे अधिक भी यदि हम तेरी कृपा से जीयें **'भूयश्च शरदः शतात्'**—तो भी हम अदीन रहें, अर्थात् हम सभी तीन प्रकार से अदीन रहें—(1)**आध्यात्मिक अदीनता**—विषयों के दीन न हों, वरन् अपने मन के अधिपति रहें (2) **मानसिक अदीनता**—अपनी ही भिन्न विचारवाले राजा आदि के भी दीन न हों, और (3) **शरीरिक अदीनता**—(अ) दूसरों के बल पर जीनेवाले भी न हों, वरन् हमारा अपना बल आत्मविश्वास हो, (आ) **आर्थिक अदीनता**—स्वयं गुणवान् रहें, कार्य-व्यवहार, खेती-क्यारी हमारे अधीन रहे, इत्यादि।

अब इस मंत्र की संगति तनिक **'ओं वाक् वाक्'** वाले दूसरे मन्त्र से करो, जहाँ पर साधक ने प्रभु से यश और बल माँगा है—(1) वाक्, (2) प्राण, (3) चक्षु, (4) श्रोत्र, (5) बाहु आदि का, वहाँ अब साधक उस बल को पार कर उसे चिरस्थायी करने के लिए उसी क्रम से (1) **प्रब्रवाम'**, (2) **जीवेम्**, (3) **पश्येम्**, (4) **शृणुयाम्**, (5) **अदीनाः स्याम् शरदः शतम्** कह रहा है।

## प्रभु-उपासना का फल

'उपासना' अदीनता-प्राप्ति की परम रसायन है। स्वाधीनता, निर्भयता, आत्मविश्वास तथा स्वावलम्बन उपासक की दिव्य सम्पत्ति है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

## दसवीं सीढ़ी

# गायत्री मन्त्र : आत्मसर्पण

**ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो**
**देवस्य धीमहि। धियो या ना प्रचोदयात्॥**

(यजु. 36.3; ऋ. 3.62.10; साम. उ. 6.3.10)

इसके उपरान्त साधक भक्त उसी परम पुनीत, पतित-पावनी त्रयलोक तारिणी, कष्ट-निवारिणी, सावित्री गायत्री गुरुमन्त्र के द्वारा अपने-आपको प्रभुचरणों में समर्पण कर देता है और प्रार्थना करता है कि 'हे ईश्वर दयानिधे! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः'—हे ईश्वर दयानिधे! जो-जो उत्तम कार्य हम करते हैं, वे आपकी कृपा से करते हैं। जप-उपासना आदि वे सब कर्म आपके ही अर्पण हैं जिससे (1) धर्म, जो सत्य और न्याय का आचरण करना है, (2) अर्थ, जो धर्म से पदार्थों की प्राप्ति करना है, (3) काम, जो धर्म और अर्थ से इष्ट भोगों का सेवन करना है, और (4) मोक्ष, जो सब दुःखों से छूटकर सर्वदानन्द में रहना है, इन चारों पदार्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की सिद्धि कृपया हमें शीघ्र प्राप्त कराइये।'

भीमसेन—यह मन्त्र आरम्भ में भी आया, बीच में भी और अब भी। एक ही सन्ध्या में इतनी बार क्यों?

वनी—पहले और बीच का कारण तो मैं तुम्हें बतला चुका हूँ; यहाँ इसके प्रार्थना-शब्दों से आशय आप ही स्पष्ट हो रहा है और वह यह कि अब साधक गद्‌गद् प्रसन्न होकर अपने आपको प्रभु-चरणों में समर्पण कर रहा है; जिससे आरम्भ किया, जिसके लिए किया था, अब उसी को प्राप्त

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


करके उसी के अर्पण हो रहा है, अर्थात् जिस बुद्धि और तेज के द्वारा उसे यह सब प्रकृति, जीव, ब्रह्म और ज्ञान प्राप्त हुआ, जिस आशय से यज्ञोपवीत पहनकर तीन तारों के द्वारा इन तीनों विद्याओं का गायत्री गुरूमन्त्र से गुरू ने उपेदश किया था, उसी को फिर प्रभु की दात (देन) समझकर प्रभु के अर्पण करता है। या, यों समझो कि जो दाने या गुठली धरती से उत्पन्न होते हैं, यदि उनको उपज प्राप्त करके उसे घर में रखा जाए तो उसका सिलसिला समाप्त हो जाएगा; यदि उन्हें फिर उस धरती के अर्पण कर दिया जाय तो वे फिर एक से अनेक होकर प्राप्त होते हैं।

गायत्री मन्त्र की विस्तृत व्याख्या तो 'गायत्री रहस्य' नामक पुस्तक में है, उसे पढ़ लेना। अब उससे कुछ अधिक और बता दूँ। गायत्री शब्द का अर्थ ही गायत्री की महिमा बतला रहा है, अर्थात् यास्काचार्य जी ने निरुक्त में गायत्री शब्द की निरुक्ति करते हुए लिखा है–

**गायतो मुखाद् उतपतदिति गायत्री**

अर्थात् "गान करते हुए परमेश्वर के मुख से सबसे प्रथम 'गायत्री निकली, अतः इसका नाम 'गायत्री' है।"

अत्रिस्मृति में लिखा है–

**सावित्र्यास्तु परं नास्ति पावनं परमं स्मृतम्।**

अर्थात् 'गायत्री से बढ़कर अन्य कोई मन्त्र नहीं है; यही परम पवित्र करनेवाला मन्त्र समझा गया है।'

शंखस्मृति में आया है कि–

**गायत्री वदेजननी, गायत्री पापनाशनी।**
**गायत्र्याः परमं नास्ति, दिवि चेह च पावनम्।।**

अर्थात् 'गायत्री वेद की माता है, गायत्री सब पापों को नाश करने वाली है, गायत्री से बढ़कर पवित्र करने वाली द्युलोक और पृथिवीलोक में अन्य कोई वस्तु नहीं।

इससे भी बढ़कर शंख ऋषि ने इसका महत्व इस प्रकार लिखा है–

**हस्तत्राणश्प्रज्ञा देवी पततां नरकार्णवे।**

अर्थात् 'जो लोग अपने पापों के कारण दुर्गति और दुःख के समुद्र में पड़े हुए हैं, उन्हें यह गायत्री देवी अपने हाथ का सहारा देकर उठाती है।'

भीमसेन–आप गायत्री मन्त्र की बड़ी महिमा गाते हैं और ऋषि-मुनियों के वाक्यों से भी उसका समर्थन करते हैं। यह कैसे पवित्र कर देती होगी?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


यह कैसे पाप-मोचनी और त्रयलोकतारिणी है?

वनी-बेटा! कहा तो है कि विस्तृत व्याख्या के लिए 'गायत्री रहस्य' पढ़ो! हाँ, इस उदाहरण से शायद कुछ तुम्हारी समझ में आ जाय, तो विश्वास कर लेना। मान लो, तुम्हें अपने घर के लिए बहुत-से काठ (लकड़ी) के सामान की आवश्यकता है; तुम स्वयं अनजान हो और यह भी चाहते हो कि लागत कम आए, कोई बड़ा वृक्ष नीलामी में पूरा मोल ले लूँ तो सब आवश्यकता पूरी हो जाय। अतः तुमने एक ईमानदार और सुयोग्य बढ़ई को साथ लिया और वन में एक बड़ा वृक्ष देखा। तुम्हारे बढ़ई ने वृक्ष को ऊपर से नीचे तक बड़े ध्यान से जाँचा, उसके तने को नापा और कहा कि यदि सौ रुपये में भी यह वृक्ष मिल जाये तो भी सस्ता है। तुम चकित रह गए। दूसरे ग्राहक भी आ गए। तुमने उनसे पूछा, तो उन्होंने कहा 50 रुपये से अधिक मूल्य का नहीं। इञ्जीनियर साहिब आए। बोली दी तो 60 रुपये तक पहुँचे। साहिब ने कहा—जाओ, नीलाम नहीं हो सकता; 125 रुपये से कम में नहीं मिलेगा। अन्ततः 125 में ही वह नीलाम हुआ। तुम्हारे बढ़ई ने कहा—सबने अपनी दृष्टि से जो जाँच की थी, उससे इतने शहतीर, इतनी कड़ियाँ, इतने भाले आदि बनेंगे कि 500 रुपये का माल निकलेगा।

ऐसे ही जौहरी स्वयं जिस हीरे को देखकर उसका मूल्य 10,000 कहता है, और उतने ही में मोल लेने को प्रस्तुत होता है, तो यह समझना चाहिए कि वह हीरा उस मूल्य से बहुत अधिक का है। कारण, जौहरी की दृष्टि उस हीरे के आन्तरिक तत्त्व तक पहुँच चुकी है और उस दृष्टि को बड़े अभ्यास तथा अनुभव से प्राप्त किया है। ऐसे ही बढ़ई ने भी।

अतः जिन दीर्घदर्शी ऋषियों ने जन्म-जन्मान्तर की तपस्या और मन्त्रों के निरन्तर कई वर्ष के मनन से उनके आन्तरिक रहस्य को जाना तथा लिखा है, उसमें जो ऐसी शंका की जाय तो बड़ी भूल है। इसे स्वयं अभ्यास करके देखना चाहिये। जो काम आपने कार्यरूप से करके देखना हो विधिपूर्वक करके ही देखना चाहिये, केवल मौखिक बातों में ही नहीं रह जाना चाहिये। बेटा! तैत्तिरीय उपनिषद्, शिक्षा अध्याय, प्रथम बल्ली के 12वें मन्त्र में तो भूर्भुवःस्वः व्याहृतयों के सम्बन्ध में यहाँ तक लिखा है कि—

**ता यो वेद से वेद ब्रह्म। सर्वेऽस्मै देवा बलिमावहन्ति।**

अर्थात् 'व्याहृतियाँ जैसे वर्णन कर रही है वैसे उनको जो जानता है, वह ब्रह्म को जानता है। ब्रह्म-भावरूप स्वराज्य को प्राप्त किये हुए सर्वदेवता उसके लिए बलिदान को लाते हैं।'

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

## ग्यारहवीं सीढ़ी

# नमस्कार-मन्त्र प्रभु के चरणों में

**ओ३म् नमः शम्भवाय, च मयोभवाय च,**
**नमः शंकराय च मयस्कराय च,**
**नमः शिवाय च शिवतराय च॥** (य. 16.41)

अन्त में उपासक परमात्मा की कृपा, करूणा, महिमा, तथा उपकार को स्मरण करके अगाध श्रद्धा तथा प्रेम से यह सब-कुछ प्रभु की दात (देन) और दया समझकर बारम्बार अपने सिर को उसके चरणों में झुका देता है, इस भावना से कि मेरे पास इस नम्र नमस्कार के सिवा प्रभु की भेंट धरने के लिए और कुछ नहीं है।

**प्रभो! यह पुस्तक जो तेरी दात-से लिखी गई है,**
**तेरी भेंट है!**

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(टेकचन्द आश्रित)

॥ ओ३म् ॥

## परिशिष्ट 1

# योगयुक्त संयम

वनी–बेटा भीमसेन! अब सारी सन्ध्या तो विद्वानों की पुस्तकों से पढ़कर उनके अपने शब्दों में और कुछ अपनी अनुभूत बातों को मोटे-मोटे शब्दों में तुम्हें बतला दी, किन्तु एक बात यह स्मरण रक्खो कि–

**सन्ध्या के मन्त्र कहने मात्र से कभी पूरा न होगा। इसके लिए मन को प्रतिदिन ट्रेनिंग (Training) सुशिक्षा देनी चाहिए। यही सन्ध्या के समय भी दी जाती है। जो भी प्रयत्न से अपने मन पर यह सुसंस्कार डालेगा, वही उपयुक्त अवस्था का अनुभव प्राप्त कर सकेगा, चाहे इसमें जितनी भी आयु लग जाय।**

इसमें एक तो निचली कक्षा है–अपनी पड़ताल से पश्चात्ताप तथा धन्यवाद की।

दूसरी मध्यम कक्षा है–ज्ञानी विद्वानों से ज्ञान तथा शिक्षा प्राप्त करके साधना करने की।

तीसरी उत्तम कक्षा है–अणु-अणु में प्रभु की विचित्र लीला का भान करते हुए प्रभु में लीन हो जाने की।

धीरे-धीरे जब मनुष्यसतत प्रयत्न करता रहता है तो एक कक्षा से दूसरी कक्षा में पहुँच जाता है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


भीमसेन–महाराज! आप कभी-कभी कहा करते हैं कि सन्ध्या के दूसरे मन्त्र में पहले चार–वाक्, प्राण, चक्षु, और श्रोत्र तो खुले हुए हैं और छिद्रवाले हैं, और दूसरे चार–नाभि, हृदय, कण्ठ और सिर में बन्द हैं। इन्हें परमात्मा ने बाहर से डाट (कॉर्क) लगाकर बन्द कर दिया है, और जबतक अन्दर के पट न खुलें तबतक साक्षात् नहीं होता, फिर केवल बाहर के पट बन्द कर देने से क्या लाभ? इस सम्बन्ध में आपने कहीं भी कुछ नहीं बतलाया। कृपा करके इसे भी समझा दें।

वनी–बेटा! इसका सम्बन्ध योग से है। ध्यान की अवस्था तक पहुँचा हुआ साधक इससे लाभ उठा सकता है और इसे समझ भी सकता है। फिर भी मैं तुम्हें समझाने का प्रयत्न करता हूँ। तनिक ध्यान से सब सुनना!

ध्यान टिकाने से पहले वाक्, प्राण, चक्षु और श्रोत्र का संयम परमावश्यक है, अन्यथा ध्यान न टिक सकेगा।

भीमसेन–यह संयम कैसे किया जाय?

वनी–(1) **यम से**–(अ) खाने और बोलने का संयम करो। वाक् के संयम से 'अहिंसा' व्रत में सफलता होगी। (आ) प्राण के संयम से 'सत्य' सफलता होगी। (इ) चक्षु के संयम से अस्तेय में, श्रोत्र के संयम से 'ब्रह्मचर्य' में और इनके बिगाड़ से सब यम निष्फल हो जाएँगे।

(2) **नियम से**–(अ) नाभि के संयम से 'शौच', (आ) हृदय के संयम से 'संतोष', (इ) चक्षु के संयम से 'तप', (ई) 'शिर' के संयम से 'स्वाध्याय', (उ) 'करतल' के संयम से 'अपरिग्रह', और (ऊ) 'करपृष्ठे के संयम से 'ईश्वर-प्रणिधान' में सिद्धि होगी।।

भीमसेन–महाराज! मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आया कि यह

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


संयम कैसे किया जाय?

वनी–वाक् को नाभि में, प्राण को हृदय में, चक्षु को कण्ठ में, श्रोत्र को सिर में टिका दिया जाय। इन सबका परस्पर सम्बन्ध है–

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| नाभि | | हृदय | | कण्ठ शिर | |
| ↓ | कर्म, | ↓ | उपासना, और | ↓ | ज्ञान के |
| वाक् | | प्राण | | चक्षु, श्रोत्र | सूचक हैं। |

भीमसेन–अब भी मेरी समझ में नहीं आया, इसका क्या सम्बन्ध है?

वनी–मनुष्य को अधिक तंग करने वाली भूख और प्यास है, जो नाभि से पैदा होती है। जिह्वा को कण्ठकूप में लगा देने और नाभिचक्र में ध्यान करने से भूख-प्यास नहीं लगती और अपने वश में हो जाती है। यह भारी तप है जो ब्रह्मचर्य में सहायक है और ऊर्ध्वरेता होने का यह बड़ा अच्छा साधन है। (2) मनुष्य जब गर्मी से व्याकुल होता है तो वह वायु की इच्छा करता है और वस्त्र खोलकर वायु के लिए अपना हृदय सामने कर देता है; इससे ही उसे शान्ति आ जाती है। वायु का स्वभाव सम रहना, अर्थात् समता है, अतः प्राण को हृदय में टिकाने से मनुष्य में समता, उदारता, नम्रता और फिर सन्तोष आता है जो कि सत्य का सहायक है। (3) जब किसी को लज्जित करना हो, तो यह कहा जाता है कि अपने गरेबान (कुरते का गला) में दृष्टि डालो। ध्यान को विचलित करने वाली कामवृत्ति होती है। काम का स्थान आँख है, अतः चक्षु का जब कण्ठ में लगा दिया जाय, तो आँख नीचे को हो जाएगी, जैसे लज्जावान् मनुष्य की आँख सदा नीचे रहती है। ऐसा करने से शरीर सम और मेरूदण्ड अपने स्थान पर फिट (FIT=ठीक) हो जाता है। कामवृत्ति आँख को उल्टा देने से रोकती है, या नीचे गरेबान में कर लेने से। चूँकि आँख का उल्टाना कठिन काम है और बल लगाने से हानि भी हो जाती है, अतः नीचे ही लगाना सुगम है। इससे कामवृत्ति दबी रहती है। (4) श्रोत्र का सिर (ब्रह्मरन्ध्र) में संयम करने से अहंकार पर विजय होती है। जाग्रतावस्था में जीवात्मा आँख में होता है, स्वप्न-समय कण्ठ में और मरण-समय भी वह इसी कण्ठ में 'विशुद्धि-चक्र' है। इन दोनों के खुल जाने से 'ज्ञाननेत्र

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


खुल जाता है। 'जालंधर बन्द प्राणायाम' इन सबका साधन है।

**नाभि, हृदय, कण्ठ और शिर**, यह चारों 'चक्रस्थान' है। अग्नि, जल, वायु और आकाश ये चारों 'तत्त्व' है। जिस साधक योंगी के चक्र खुल जाते हैं, इन तत्वों के रहस्य उसके सामने शीशे के समान आने लगते हैं, और उसकी स्थिति बहुत ऊँची हो जाती है। पृथिवी-तत्त्व का रहस्य 'मूलाधारचक्र' से जल-स्थान, नाभि, जो रीढ़ की हड्डी के नीचे गुदा-स्थान के ऊपर है। वाणी जल-स्थान, नाभि अग्नि-स्थान, प्राण अग्नि-स्थान, हृदय वायु-स्थान, चक्षु तेज-स्थान, कण्ठ जल-स्थान, श्रोत्र और सिर दोनों आकाश-स्थान है। अस्तु, ये बातें सूक्ष्म हैं, साधारण सन्ध्या करने वालों की समझ में नहीं आ सकती।

सब नवयुवक—अब कुछ-कुछ समझ में आया है, किन्तु नाम-मात्र। यदि महाराज कृपा करके यह बतला दें कि इनका संयम कैसे किया जाता है तो बहुत अच्छा हो।

वनी—यह तो बेटा! बहुत ही कठिन, वरन् असम्भव है। जबतक कोई पहली मंजिलें तय न कर ले, वह यह विधि कैसे सीख सकता है। तुम एफ.ए. में पढ़ते हो, बड़े सुयोग्य हो, परन्तु इसे नहीं समझ सके। मैं स्वयं हिचकिचाता था कि समझाऊँ तो कैसे समझाऊँ? प्राणायाम तक भी जो न जानता हो, उसे आगे का क्या पता? फिर इन योग-क्रियाओं या आत्मिक उन्नति में तो यम-नियम का पालन आवश्यक है; ब्रह्मचर्य तथा तप का जीवन होना चाहिये। भला जो युवक, या कोई और सिनेमा, थियेटर देखने, अचार-खटाई खाने, कंघी-पट्टी करने, स्त्रियों के समान टेढ़े चीर (मांग) निकालने और सदैव शीशा जेब में रखने वाले हों, सिगरेट कभी मुख से भी न हटाएँ, छतरी के समान बाल कटवाएँ और टेढ़ी टोपी रखने वाले हों, वे बेचारे इस मार्ग में कैसे पग रख सकते हैं? यह मार्ग तो धर्म-मार्ग है। वीर-धीर पुरुष ही इस मार्ग पर चलकर प्रभु की इस अद्वितीय दात के अधिकारी बन सकते हैं।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

## परिशिष्ट 2

# सन्ध्या-कोर्स

प्रभात हुई। वानप्रस्थी जी अपने भजन-ध्यान आदि से निवृत्त हुए, तो भीमसेन और विद्यार्थी आ पहुँचे। वे नमस्ते करके बैठ गए।

वनी जी ने पूछा—भीमसेन, क्या हाल है? अब सन्ध्या क्रियारूप से करते हो न?

भीमसेन—नहीं महाराज! आज इसलिये आया हूँ कि ध्यान नहीं टिकता। कोई ऐसी विधि बता दें जिससे ध्यान तुरन्त लग जाय। अब मैं एफ.ए. में पढ़ता हूँ। अगले वर्ष बी.ए. में चला जाऊँगा। अब भी यदि ध्यान से सन्ध्या न हुई तो कब होगी? अब मैं बच्चा थोड़ा ही हूँ कि वैसे ही रट लिया करूँ,

वनी—बेटा! सबको सन्ध्या अपनी-अपनी अवस्था-अनुसार करनी चाहिये, तभी सफलता होती है। आयु में बड़ा होने से बड़ों के समान सन्ध्या नहीं करनी चाहिये। द्रव्य का धनी होने बड़ों के समान सन्ध्या नहीं करनी चाहिये। न बल अथवा विद्या में ही बड़ा होने से बड़ों के समान सन्ध्या करनी चाहिये। इन सभी को पहले छोटों के समान ही सन्ध्या करनी चाहिये।

समाधिस्थ अवस्था में आँख, कान और मुख मूँदकर वही बैठ सकता है, जो आयु आदि में बड़ा होने की जगह अनुभव में बड़ा है, क्रियाशील है। धनी वही है जो मन का धनी (निर्लोभी) है, जिसे मोह और शोक न दबा सकें। बड़ा वही है जो बल में बड़ा न होकर संकल्प

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में बड़ा है, जो भी संकल्प करता है उसे पूर्ण करके ही छोड़ता है। ऐसा बड़ा आदमी भी समाधि लगा सकता है। बच्चे की अवस्था से ही उत्तरोत्तर उन्नति करनी चाहिये, एकदम नहीं। मेरी तो यही सम्मति है अन्यथा कभी किसी को सफलता नहीं हो सकती।

भीमसेन–फिर वैसे ही आरम्भ कराइये, महाराज!

वनी–बेटा! तुम तो रहते हो कालिज में। कुछ दिन के लिए आए हो। इतने में तो सीख नहीं सकते। हाँ, मैं तुम्हें सन्ध्या का पूर्ण कोर्स (Course पाठ्यक्रम) और स्कीम (Scheme, क्रिया प्रणाली) बता देता हूँ, उसके अनुसार जैसे-जैसे अवस्था बनती जाय, उन्नति करते रहो।

भीमसेन–बहुत अच्छा, बतलाइये!

वनी–सन्ध्या का कोई भी कोर्स बनाकर सिखाया जाना चाहिये, जैसे पाठशालाओं और कालिजों में प्राइमरी, मिडल, एण्ट्रेंस, एफ.ए., बी.ए. और एम.ए. की श्रेणियाँ हैं।

## शिशुवर्ग

बच्चों को केवल पाठमात्र, सन्ध्या के मन्त्र याद कराए जाएँ, और प्रतिदिन प्रातः-सायं रटाए जाया करें। शब्दोच्चारण शुद्ध कराया जाय। जब तक इसी श्रेणी में रहें। शब्दों का उच्चारण शुद्ध हो जाय, और सबकी ध्वनि एक हो जाये तो आगे बढ़ें। यह प्राइमरी क्लास है, दूसरी बात यह भी सिखाई जाय कि निद्रा से जागकर हाथ-मुँह कैसे धोया जाये और स्नान कैसे करना चाहिये।1

शौचादि से निवृत होकर सन्ध्या के दूसरे मन्त्र के क्रम से पहले मुख से कुरला (कुल्ला) करें, फिर नाक साफ करें, फिर आँखें धोएँ। दाँतुन जल से साफ करें। गन्दगी खुली न रहे, मिट्टी से ढक दें, जल में भी न डालें। स्नान करते समय तीसरे मन्त्र के अनुसार पहले सिर को भिगोएँ, फिर आँख-नाक-मुख को मलें, फिर पेट को मलें, फिर टाँगें और पैर। फिर सिर को जल के नीचे करें या शरीर पर जल डालें। जबतक शारीरिक शुद्धि का ठीक ढंग न आएगा, सन्ध्या से मन की शुद्धि कैसे करेंगे?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## कुमार वर्ग

गायत्री मन्त्र से चोटी में गाँठ लगवानी चाहिये। 'शन्नो देवी' मन्त्र से आचमन, आगे इन्द्रिय-स्पर्श और मार्जन कराके प्राणायाम की जगह तीन बार गहरे लम्बे श्वास लेने (Deep breathing) की क्रिया कराई जाएं। फिर 'ऋत्यञ्च सत्यञ्चा' के उपरान्त 'शन्नो देवी' मन्त्र से आचमन और गायत्री मन्त्र अर्थ सहित तथा प्रार्थना पश्चात्ताप-सहित कहलवाई जाए। मनसा परिक्रमा और उपस्थान मन्त्र पाठरूप से कराकर गायत्री मन्त्र और समर्पण बोलकर, 'नमःशम्भवाय च' पढ़ाया जाय। यह मिडिल क्लास समझी जाय। उच्चारण सबका शुद्ध हो।

## युवकवर्ग

इन्हें अब अगले दर्जे का प्राणायाम सिखाया जाय। एक श्वास में एक मन्त्र पूरक, कुम्भक, रेचक, एक-एक मन्त्र आरम्भ में लम्बी साँस (Deep breathing), तीन बार कराके मिडल के समान आरम्भ कराया जाय। भेद केवल इतना हो कि मार्जन के उपरान्त प्राणायाम चुपचाप करें। फिर 'ऋतुञ्च सत्यञ्च' का पाठ आरम्भ हो, किन्तु मन्त्रों के अर्थ साथ-साथ बोलें, अर्थ एक-एक बारी-बारी से कहें, और शेष सब मन में ही साथ-साथ कहते जाएँ। मनसा परिक्रमा से पहले गायत्री मन्त्र भी सब चुपचाप करें, दिल में बोलकर पश्चात्ताप की प्रार्थना करें, और 'नमः शम्भवाय च' से पहले गायत्री मन्त्र के पश्चात् समर्पण-प्रार्थना भी सब मन में ही करें। यह है मैट्रिक क्लास।

## गृहस्थी अथवा कालजियेट

इनकी सन्ध्या इकट्ठी न हो, एकांत (अकेले) में ही होनी चाहिये; ये समझदार हैं। कालिजवाले भी प्रायः सब विषयों की अपनी तैयारी एकान्त में ही जाकर करना पसंद करते हैं। यहाँ से ही वास्तविक सन्ध्या आरम्भ होगी। आसन लगाकर बैठे, सम अवस्था में सीधे होकर आँखें मूँद लें, प्राणायाम करके बैठ जाएँ। यह अभ्यास करें कि उनका शरीर बिना

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिले-जुले रहे बाहर से मुख पर मक्खी बैठे या मच्छर, कहीं काटे या बैठे, या अन्दर से कहीं खुजली हो, न मक्खी को हाथ से उड़ायें न मच्छर को, न खुजली करें, वरन् उस स्थान में अपना ध्यान न ले-जावें। प्राण रोक लें, मक्खी उड़ जाएगी, खुजली का विचार हट जाएगा, वह अभ्यास हठ तथा धैर्य से करना पड़ेगा?। धारण कर लें कि 5 मिनट, फिर 10 मिनट, फिर आधा घण्टा तक हम अपने-आपको निश्चय बना लेंगे।

अब जब ऐसी अवस्था बन जाए, तो मन उनका अपना बनने लग जाएगा, इन्द्रियों पर कण्ट्रोल (काबू) होने लगेगा। अपने ऊपर आए हुए कष्टों को भी वह अपने संकल्प-(ध्यान)-मात्र से हटा सकेंगे। धीरता और गम्भीरता आती जाएगी।

फिर अब गायत्री मन्त्र से चोटी को ऊपर खींचकर, सँवारकर गाँठ दें और यह भावना करें कि हम अपनी बुद्धि को आत्मा के साथ जोड़कर प्रभु के दरबार में शान्ति का प्रसाद पाने के लिए उपस्थित होते हैं। अब मन्त्र को प्रेम से होठों में स्वर से (जैसे पहले करते रहे हैं) उच्चारण करें, और शब्द के स्वर में अपने ध्यान को टिका दें। जिस मन्त्र पर वृत्ति बदल जाय, फिर आरम्भ से सन्ध्या करने लगें। जैसे 'शन्नो देवी' से 'ऋतञ्च सत्यञ्चा' पर जाकर 'तपसोऽध्यजायत' पर मन की वृत्ति कहीं और चली गई है तो अब 'शन्नो देवी' से फिर आरम्भ करें, इसी प्रकार जहाँ भी वृत्ति निकले, फिर से लौटकर आरम्भ करें। सन्ध्या के मन्त्र पूरे करने की कोई आवश्यकता नहीं, अभिप्राय तो ध्यान टिकाने से है, आवश्यकता तो मन पर विजय पाने की है। समय नियत कर लें कि आधा घण्टा सन्ध्या के लिए है। अब आधे घण्टे में चाहे दो ही मन्त्र हो, चाहे पूरी सन्ध्या हो जावे। इसी प्रकार अभ्यास करते रहे। यह है एफ.ए. क्लास। जब तक एकचित होकर सन्ध्या पूरी न हो जाय, तब तक यही श्रेणी रहेगी।

## बी.ए.

अगली कक्षा बी.ए. की है। जैसे पीछे मन्त्रों की भावना और अर्थ बतलाए गए हैं, वैसे ही क्रिया करते हुए समाधिस्थ अवस्था में योगी के समान मन्त्र के शब्दार्थ-भाव में लीन हो जाएँ। इसमें भी समय नियत हो,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


चाहे एक मन्त्र में तल्लीन होकर ही समय पूरा हो जावे या दस तक। धीरे-धीरे सारी सन्ध्या इस प्रकार पूरी कर लें, चाहे कितनी ही वर्ष लग जाएं। नियमपूर्वक अपनी इन्द्रियों के कर्मों का आत्मनिरीक्षण, पश्चात्ताप आदि सब करें। जब यह समाप्त हो जाएगी, तब अपना अन्तःकरण उज्ज्वल दिखाई देने लगेगा और ध्यान टिक जाया करेगा, बुद्धि तीव्र हो जाएगी, पाप की ओर वृत्ति नहीं दौड़ेगी और शुभ कर्मों में ही सदा बनी रहेगी। सन्ध्या-ध्यान का नशा ऐसा चढ़ेगा कि सन्ध्या के समय अपने-आप और कोई काम नहीं सूझेगा। जैसा कि अफीमी को जिस समय सिर में खुमार चढ़ने लगता है तो वह सब काम छोड़ देता है और अफीम की खोज करता है, या जैसे दोपहर को जब भूख खूब लगती है, तो कोई काम सिवाय रोटी के मीठा नहीं लगता, ऐसे ही यह अवस्था बन जाएगी। तदनन्तर प्राणायाम उपासना द्वारा भक्ति करना या निर्गुण उपासना करना, यह एम.ए. की श्रेणी होगी।

यह है कोर्स। यदि पाठशालाओं में, विद्यालयों में, गुरुकुलों में, कालिजों में या प्राइवेट तोर पर समाजवाले, आप भी, और अपनी सन्तानों से भी इसके अनुसार आचरण कराएँ तो एक दिन अवश्य ध्यान टिक जाएगा और हमारा जीवन सुधरने लगेगा, अन्यथा जैसे अब पचास वर्ष तक वही रटन और वही पहली श्रेणी है, ऐसे सौ वर्ष भी चली जाएगी।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

## परिशिष्ट 3

# सन्ध्या-मन्त्र तथा भावार्थ

भीमसेन–महाराज! एक साधारण व्यक्ति, जिसे सन्ध्या के मन्त्र तो आते हैं किन्तु शब्दार्थ नहीं जान सकता, उसके लिए सुगम भावार्थ क्या हो सकते हैं जिन्हें वह मन्त्र के साथ-साथ प्रार्थनारूप में भी प्रकट कर सके? कारण, समस्त सन्ध्या तो साधक की भिन्न अवस्थाओं का बखान करती है। जिसे अभी प्रभु की ज्योति का भान भी नहीं हुआ, वह उसमें मग्न कैसे होगा? अतः यह भावार्थ बतलाने की कृपा भी अवश्य कीजिये।

वनी–अच्छा, वह भी सुन लो! (गायत्री मन्त्र से चोटी की गाँठ लगाकर)–

**(1) आचमन मन्त्र**

**ओं शन्नादेवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभि स्त्रवन्तु नः।**

**भावार्थ**–हे कल्याणकारी प्रभो! मेरे हृदय में अपनी सर्वव्यापकता का विश्वास तथा प्रकाश दो। दिव्य गुण और सुखों की वर्षा करो और आसुरी गुण दूर करो।

**(2) इन्द्रिय स्पर्श मन्त्र**

**ओं वाक् वाक्**–प्रभो! मेरी वाणी को जीवित वाणी बनाओ, यशस्विनी और बलवती वाणी बनाओ। सत्यवादिनी, प्रियवादिनी, शुभवादिनी बनाओ। यह कभी कटु, कठोर, असत्य, असभ्य और अशुभ न बोले, किसी को दुःख न पहुँचाये, मिथ्या वाद-विवाद न करे, सबको शान्त तथा सन्तुष्ट करने वाली हो।

**ओं प्राणः प्राणः**–प्रभो! मेरे प्राणों को सुरक्षित रक्खो, श्वास-श्वास तेरे अर्पण हो और दूसरों के प्राण तथा स्वास्थ्य-रक्षा का बल दो।

**ओं चक्षुः**–प्रभो मेरी आँखों को विश्वामित्र बनाओ तथा लज्जा से भरपूर रक्खो।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


**ओं श्रोत्रं श्रोत्रम्**—प्रभो! मेरे कान सदा भला सुनें और दीन-दुःखियों की पुकार पहचानें।

**ओं नाभिः**—प्रभो! मेरे समान वायु को बलवान् करो और नाभि को यज्ञरूप बनाओ।

**ओं हृदयम्**—प्रभो! मेरे हृदय में उदारता और नम्रता हो और इसमें आपका निवास-स्थान हो।

**ओं कण्ठः**—प्रभो! मेरे कण्ठ की मधुरता दीन-दुखियों को रिझाने-वाली और उनका दुःख दूर करने वाली हो।

**ओं शिरः**—प्रभो! मेरे मस्तिष्क में सुविचार और अपना तेज दीजिये जिससे मैं अपना और दूसरों का भला कर सकूँ।

**ओं बाहुभ्यां यशोबलम्**—प्रभो! मेरे बाहुओं में बल दो जिससे मैं आततायी जनों को लय कर सकूं और निर्बलों को आश्रय दूँ।

**ओं करतलकरपृष्ठेः**प्रभो! मेरा सब ग्रहण तथा त्याग आपके अधीन हो।

**( 3 ) मार्जन मन्त्र**

**ओं भूः पुनातु शिरसिः**—हे रक्षक पिता! मेरे सदाचार को पवित्र करो।

**ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः**—हे दुःखविनाशक प्रभो! मेरी ज्ञानेन्द्रियों तथा विचारों को पवित्र करो।

**ओं स्वः पुनातु कण्ठेः**—हे सुखस्वरूप! मेरे स्वत्व की रक्षा करो।

**ओं महः पुनातु हृदये**—हे महान् प्रभो! मेरे हृदय में अपनी महानता और उदारता भर दो और इसकी कुटिलता, कठोरता और कृपणता को दूर करो।

**ओं जनः पुनातु नाभ्याम्**—हे जननी! मेरे ब्रह्मचर्य की रक्षा करो।

**ओ तपः पुनातु पादयोः**—हे सामर्थ्यशाली प्रभो! मेरा जीवन तपोमय बनाओ।

**ओं सत्यं पुनातु पादयोः**—हे सामर्थ्यशाली प्रभो! मेरे जीवन को सत्य से पवित्र करो।

**ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र**—हे आश्रयदाता! मेरी समस्त इन्द्रियाँ तुम्हारे सहवास से पवित्र हों।

**( 4 ) प्राणायाम मन्त्र**

अर्थ तीसरे मन्त्र के प्रत्येक पद के पूर्व में हैं।

**विधि साधारण प्राणायाम**—पहले दोनों नासिकाओं से बलपूर्वक 'रेचक' करना (श्वास बाहर निकालना) चाहिए और इस एक श्वास में एक बार यह मन्त्र कहना चाहिए। फिर 'कुम्भक' (बाहर का श्वास रोक) कर मन्त्र का एक

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


बार पाठ करे, फिर 'पूरक' करता हुआ अन्दर श्वास खींचता हुआ एक बार मन्त्र पढ़ें, और फिर अन्दर ही श्वास एक बार मन्त्र पढ़कर कुम्भक-पूरक करें। ऐसे तीन बार रोककर प्राणायाम करने से 12 बार मन्त्र का पाठ हो जाएगा।

**5 से 7 तक अघमर्षण मन्त्र**

**ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चा भीद्धात्तपसोऽध्यजायत।**
**ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो आर्णवः॥१॥**
**समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।**
**अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी॥२॥**
**सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।**
**दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः॥३॥**

**भावार्थ**—हे सर्वान्तर्यामी प्रभो! सारा संसार तेरे आश्रय है और मैं भी तेरे ही आश्रित हूँ। मुझे आशीर्वाद दो कि मुझे कोई पाप न होने पाए और जो पाप मैंने किये हैं, उनका दण्ड भोगने के लिए मैं सदैव तैयार रहूँ। प्रभो! मुझे बल तथा धैर्य प्रदान करो जिससे मैं जन्म-जन्मान्तर में न खिंचा फिरता रहूँ और इस जन्म में ही सब दण्ड सहन करके उऋण हो सकूँ।

## मनसा परिक्रमा मन्त्र

**(8) ओं प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥१॥**

**भावार्थ**—जिस मोह के बन्धन से मेरे मन की अवस्था काली पड़ गई है और तेरे प्रकाश को रोके हुए है, अग्निदेव प्रभो! उसे मैं आदित्य ज्ञानी पुरुषों के सत्संग और आपके आशीर्वाद से हटा सकूँ। मैं किसी से द्वेष न करूँ यदि कोई मुझसे द्वेष करे भी तो उसके बदले का विचार मुझे स्वप्न में भी न आए। मैं उसे तेरे न्याय पर छोड़ दूँ। तू अपनी दया से उसे दग्ध करके आपस में हमारी प्रेम-प्रीति बढ़ा दे।

**(9) ओं दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः तेभ्यो.....**

**भावार्थ**—टेढ़ी चालों से मेरे आत्मा को लोभ का बन्धन है, हे इन्द्र भगवन्! आपके आशीर्वाद तथा अनुभवी ज्ञानी पितरों द्वारा मेरा वह बन्धन दूर होकर मैं शुद्ध होऊँ। मैं किसी से द्वेष.....

**(10) ओं प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः। तेभ्यो.....**

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


**भावार्थ**–जिस काम-रूपी 'पृदाकू' (अजगर) ने मेरी श्रेष्ठता को गिरा दिया है, उस काम (अजगर) से मेरी रक्षा करने वाले 'वरुण' (श्रेष्ठ) प्रभो! कामजित् सन्यासियों के उपदेशों द्वारा और आपके आशीर्वाद से मेरा यह काम मेरे वश में हो। मैं किसी से द्वेष.....

**( 11 ) ओं उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिता शनिरिषवः। तेभ्यो.....**

**भावार्थ**–हे सोमदेव! जिस क्रोध ने मेरी सौम्यता का नाश कर रक्खा है, योगियों के सहवास और आपके आशीर्वाद से मेरा वह क्रोध शान्त होकर सौम्यता का वह मुझे रस प्राप्त हो। मैं किसी से द्वेष.....

**( 12 ) ओं ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इष्वः। तेभ्यो.....**

**भावार्थ**–जिस अहंकार से मेरी दृढ़ता, गम्भीरता और धीरता में चंचलता आती है, हे सर्वव्यापक विष्णु भगवन्! आपके आशीर्वाद और उन ब्रह्मज्ञानियों और तपस्वियों के संग से, जिन्होंने प्रकृति से ऊपर उठकर इस अहंकार का साक्षात् किया है, मेरा वह अहंकार भी विश्व-अहंकार हो जाय। मैं किसी से द्वेष.....

**( 13 ) ओं ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो.....**

**भावार्थ**–हे ज्ञान के अधिष्ठाता बृहस्पतिदेव! आप सात्त्विक विद्या का प्रसाद देकर मुझे भी पूर्ण सात्त्विक बनाइये। मैं किसी से द्वेष.....

## उपस्थान मन्त्र

**( 14 ) ओ३म् उद्वयन्तमसस्परिस्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥**

हे प्रभो! प्रकृति की तम-अवस्था से मेरा उत्थान करो और मुझे मेरे आत्मस्वरूप में स्थिति दो तथा अपनी उत्तम ज्योति के दर्शन कराओ।

**( 15 ) उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्॥**

**भावार्थ**–हे प्रभो! मैं अणु-अणु में आपकी सर्वव्यापकता का भान करूँ।

**( 16 ) आं चित्रं देवानामुदगादनी कं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्राद्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा॥**

**भावार्थ**–हे प्रभो! आपकी विचित्र ज्योति, तेज और बल सभी जगह विस्तृत हैं, मुझे भी उनसे तेजवान् व प्रकाशित कर दो।

**( 17 ) ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदःशतं**

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


**जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥**

**भावार्थ**–हे प्रभो! आपके प्रकाश में मैं सौ वर्ष तक देखूँ, सौ वर्ष तक जीऊँ, सौ वर्ष तक बोलूँ, सौ वर्ष तक अदीन रहूँ, और इससे अधिक भी ऐसा ही रहूँ।

**( 18 ) ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥**

## गायत्री मन्त्र

**भावार्थ**–प्राणदाता दुःखनाशक, सुखस्वरूप! मैं आपको वरकर अपने-आपको आपके समर्पण करता हूँ, जिससे कि मैं आपके भर्गः स्वरूप को धारण कर सकूँ। मेरी बुद्धि के आप ही सवितः हैं। इसे अपनी इच्छा के अधीन चलायें।

**( 19 ) नमस्कार मन्त्र ( झुक जाओ )**

**ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च**
**नमः शङ्कराय च मयस्कराय च**
**नमः शिवाय च शिवतराय च॥**

**भावार्थ**–हे शान्तिस्वरूप प्रभो! आपको नमस्कार है। हे सुखस्वरूप प्रभो! आपको नमस्कार है। हे दूसरों को शान्ति देने वाले! आपको नमस्कार है। हे दूसरों को सुख देने वाले! आपको नमस्कार है। हे सबके कल्याणकारक! आपको नमस्कार है। हे अधिक-से-अधिक कल्याणकारक! आपको नमस्कार है।

ओं शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

हमीरपुर (कागड़ा 10.7.40)
पूर्णमासी को व्रत समाप्त हुआ।

## विश्व-कल्याण के लिए प्रार्थना

**ओं सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।**
**सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥**

सबका भला करो भगवान् सब पर दया करो भगवान्!
सब पर कृपा करो भगवान्! सबका सब विधी हो कल्याण!!

**टेकचन्द 'प्रभु आश्रित'**



CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

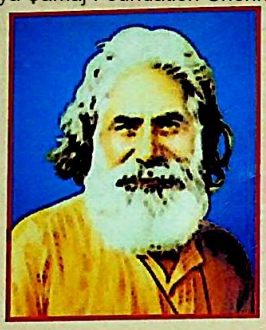
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वीतराग महात्मा प्रभु आश्रित स्मारक, रोहतक

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## अपनी महान शक्तियों को भिखारी न बनाओ

ॐ मनुष्य-शरीर में दो बड़े भिखारी हैं। एक तो जिह्वा और दूसरा हाथ। यही दोनों बड़े दानी भी हैं। यही शासक और शक्तिशाली भी हैं और यही दंड देने वाले भी। दंड भी इन्ही को बड़ा मिलता है। जिस मनुष्य ने इन दोनों शक्तियों को भिखारी बना दिया, वही संसार में गिर गया और परलोक **अगले जन्म** में बहुत नीचे जा पहुंचा, और जिसने इन्हें संभाल लिया, वह आप भी सबकी संभाल बन गया।

**भिखारी** जिह्वा से मांगता है, गिडगिड़ाता है और भीख लेने के लिए हाथ सामने बढ़ाता है और उठाता है। इसकी प्रधानता से ही मनुष्य प्रधान कहलाता है। पशु में न तो **वाणी** ही है और न हाथ ही। मनुष्य द्रव्य का दान हाथ से देता है विद्या **ज्ञान** का दान वाणी से। इसलिए शास्त्रकारों ने यही मुख्य तथा मौलिक **बुनियादी** चीजें पहले रक्खी हैं जो मनुष्य की आत्मिक उन्नति का साधन हैं।

**वीतराग महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज**

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.